वे. २२

पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न कृत वेदभाष्य परत्व प्रश्न पुस्तक का पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की ओर से प्रत्युत्तर विरजानन्द दर्पण

सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 233
दयानन्द महिला महा

भूमिका

विदित हो कि जो मैंने संसार के उपकारार्थ वेद भाष्य केबनाने का आरम्भ किया है कि जो सब प्राचीन ऋषियों की की हुई व्याख्या और अन्य सत्य ग्रन्थों के प्रमाण युक्त बनाया जाता है जिससें इस बात की साक्षी वे सब ग्रन्थ आजपर्य्यन्त वर्त्तमान हैं। और मेरे बनाये मासिक अंकों में भी विद्वानों के समझने के लिये संकेत मात्र जहां तहां लिखदिये हैं कि देखने वालों को सुगमता हो। और किसी प्रकार की भ्रान्ति वा शंका मेरे लेख पर होकर वृथा कुतर्क खड़ी करके कोई मनुष्य मेरे काल को न खोवे कि जिससे देश भर की हानि हो। और उसको भी कुछ लाभ न हो। परन्तु बहुधा संसार में यह उलटी रीति है कि लोग उत्तम कर्म कर चुके और करते हुये को देखकर ऐसे प्रसन्न नहीं होते जैसे कि निषिद्ध कर्म वा हानि को देखकर होते हैं। जो मैं निरा निरी संसारही का भय करता और सर्वज्ञ परमात्मा का कुछ भी नहीं कि जिसके आधीन मनुष्य के जीवन मृत्यु और सुख दुःख हैं तो मैंभी ऐसेही अनर्थक वाद विवादों में

मन देता परन्तु क्या करूं मैं तो अपना तन मन धन सब
त्य केही प्रकाशार्थ समर्पण कर चुका। मुझ से खुशामद
के अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चलसकता। किन्तु संसारि
लाभ पहुंचानाही मुझको चक्रवर्त्ति राज्य के तुल्य है। मैं
बात को प्रथमही अच्छी प्रकार जानता था कि न्यारिये क
मान बालू से सुवर्ण निकालने वाले चतुर कम होंगे किन्
लीन मच्छी की न्याईं निर्मल जलको गदला करने और बिग
ने वाले बहुत हैं। परन्तु मैंने इस धर्म कार्य्य का सर्व शक्ति
सत्य ग्राहक और न्याय संबन्धी परमात्मा के शरण में सौ
धर के उसी के सहाय के अवलम्ब से आरम्भ किया है॥
मैं यह भी जानता था कि इस ग्रन्थ के विषय में जो शंका
गी तो कम विद्वान् और ईर्ष्या करने वालों को होगी। पर
बड़े आश्चर्य्य की बात है कि कोई विद्वान् भी इसी अन्धका
में फिसल पड़े और इतना न झूझा कि आंख खोलकर अथ
लालटैन लेकर चलें कि जिसमें चाल चूकने पर हंसी और
न हो। यह पूर्व विचार करना बड़े विद्वान् अर्थात् दीर्घ दर्
वाले का काम है नहीं तो गिरे की लज्जा का फिर क्या
इस वेद भाष्य के विषय में पहिले आर ग्रिफिथ साहब
टानी और पण्डित गुरु प्रसाद आदि पुरुषों ने कहीं २ अप
सामर्थ्य के अनुसार पकड़ की थी सो उनका उत्तर तो अच
प्रकार दे दिया गया था। परन्तु अब पण्डित महेशचन्द्र न

रत्न जो आफीशियेटिंग पिरंसीपेल कलकत्ते में के संस्कृत कालिज के हैं। उन्हों ने भी पूर्वोक्त विद्वान् पुरुषों का रंग पकड़ कर सन् के छूंछे गोले चलाये हैं। इस लिये यद्यपि मेरा बहुमूल्य समय ऐसे तुच्छ कामों में ख़र्च होना न चाहिये। परन्तु दो बातों की सिद्धि समझ कर संक्षेप से कुछ लेख करना अवश्य जानता हूं। एक तो यह कि ईश्वर सत्य विद्या पुस्तक वेदों पर दोष न आवे कि उनमें अनेक परमेश्वर की पूजा पाई जाती है। और दूसरे यह कि आगे को सब मनुष्यों को प्रकट होजाय कि ऐसी २ व्यर्थ कुतर्क फिर खड़ी कर के मेरा काल न खोवें क्योंकि इससे कई कठिन शंका तो मेरे बनाये ग्रन्थों ही के ठीक २ मन लगाकर विचारने से ही निवारण हो सकती हैं। फिर निष्प्रयोजन मेरा सर्व हितकारी काल क्यों खोते हैं। यह दोष इस देश में बहुत काल से पड़ा हुआ है। अर्थात् महा भारत के युद्ध में जब अच्छे २ पूरे विद्वान् वेद और शास्त्रादिक के जानने वाले चल बसे। विद्या का प्रचार तथा सत्य उपदेश की व्यवस्था छूटकर तमाम देश में नाना प्रकार के विघ्न औ उपद्रव उठने लगे। तो-लोगों ने अपना २ छप्पर अपने २ हाथ से छाने की फिकर की और इस थोड़े से सुख के लोभ में उत्तम २ विद्याओं को ऐसा हाथ से खो बैठे कि जिससे उनका बिचारा हुआ लाभ भी नष्ट होगया। और तमाम अपने देश को भी धर कर डुबादिया

बड़े शोक की बात यह है कि आंखों से देख कर भी कूप में ही गिरना अच्छा समझकर अपनी अज्ञानता पर दुःखी और लज्जामान् होने की जगह भी बराबर हठ ही करते चले जाते हैं। इसका परिणाम न जाने क्या होना है॥ दूसरा कारण आर्य्यों के बिगाड़ का यह भी है। उनको जैन लोगों ने बहुत कुछ दबाया और सत्य ग्रंथों का नाश किया। फिर इन्हीं के समान मुसलमानों ने भी अपने धर्म का पक्ष करके दुःख दिया। और जब से अंगरेजों ने इस देश में राज किया तो इन्होंने यह बात बहुत अच्छी की कि सब प्रकार की विद्याओं का प्रचार कर के प्रजा को समान दृष्टि से सुधारा। परन्तु कुछ २ निज धर्म का पक्ष करते ही रहे। इसी से लोगों का उत्साह भी कम ती होता गया। और आजतक वेदों का प्रचार और सत्य उपदेश का प्रबन्ध ठीक २ होता तो किसी को शंका भ्रांति और हर वेद के विरुद्ध नवीन कल्पित मत मतान्तर का न होता। जैसा कि पण्डित महेश चन्द्र का गुमान है यह केवल उनका वेदों से विमुख होने का कारण है इसलिये उनकी भ्रान्ति निवारण विषय में कुछ लिखा जाता है॥

पण्डित महेश चन्द्र न्याय रत्न के तर्क पुस्तक का उत्तर

पं॰ महेश चं॰ न्याय॰ जीने विरुद्ध पण्डितों के साथ में अपनी राय दी है तो उन्ही के उत्तर में इनका भी उत्तर मेरी ओर सेजा न लेना ॥

पं॰ महेश॰ पण्डित दयानन्द सरस्वती जीके परिश्रम विद्या और पण्डिताई निस्संदेह प्रशंसा योग्य है परन्तु उनका कुछ फल मालूम नहीं देता ॥

स्वामीजी॰ सम्मति देने वालों की निरपक्षता और न्याय तो उनके कथन सेही प्रसिद्ध है कि जिसको छोटे विद्वान् लड़के भी भीजान लेंगे। क्योंकि पण्डित जी लिखते हैं कि स्वा॰ जी सब तरह विद्या आदि पूर्ण गुण युक्त होने से प्रशंसा योग्य हैं परन्तु कुछ फलदायक नहीं। तो उनका यह कथन पूर्वा पर विरोधी है और इसमें उनका हठ वा वेद विद्या से विमुखता साबित होती है ॥

पं॰ महेश॰ स्वामीजी का यह गुमान वा अभिप्राय है कि वेद में एक परमेश्वर की पूजा ठीक है। तथा सब संसारी विद्या और वर्त्तमान काल की कला कौशलादि पदार्थ विद्या वेदों सेही निकली हैं। इत्यादि बातें उनका मट्टी कर देती हैं ॥

स्वा॰ जी॰ इसबात का उत्तर मैं गिरीफिथ साहब के उत्तर में दे चुका हूं। जब पण्डित जीके विचार से वेदों में एक परमेश्वर की

उपासना नहीं है तो उनको उचित था वा सब भी चाहिये कि कोई मंत्र वेदों में से लिखकर यह बात सिद्ध करदें कि वेदों में अनेक परमेश्वरों का होना सिद्ध है। क्योंकि उन्होंने वेद मंत्रोंमें से कोई प्रमाण अपने पक्ष की पुष्टि के लिये नहीं लिखा। इससे इनके मनका अभिप्राय खुल गया और उनकी विद्या की थाह मिल गई कि उन्होंने जो अटकल पच्चू कूप शब्द के समान चतुराई दिखलाई है। ये सब किसी ईर्ष्यक स्वार्थी विद्याहीन और पक्षपाती मनुष्य के फुसलाने से वा अपनीही थोड़ी सामग्री अर्थात् हलदी की गांठ के बल से लिखकर बैठ रहे। कि जिसमें वृथा कीर्त्ति देश में होजावे। सो पंण्डजी यह न समझे कि भारत वर्ष में विद्वान् नहीं रहे। यह व्याघ्र की खाल किसी दिन उघड़कर सब कलई खुलजावे गी। और मैं तो अपनी थोड़ी सी विद्या और बुद्धि के अनुसार जो कुछ लिखूंगा वह सबको मालूम होता जावेगा। और जितना कर चुका वह जान लिया होगा। और कदाचित् पण्डितजी ने भी समझ लिया होगा परन्तु मूक के समान संसारी और कल्पित भय से कंद का स्वाद जानकर यथार्थ और निरपक्षता से कह और मान नहीं सकते हैं। परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देखूंगा कि वेदभाष्य संपूर्ण होजावे तो निस्सन्देह इस आर्य्यावर्त्त देश में सूर्य्य कासा प्रकाश होजावेगा। कि जिसके मेटनेको और अपने को किसी का सामर्थ्य न होगा। क्योंकि सत्य का मूल

ऐसा नहीं कि जिसको कोई सुगमता से उखाड़ सके। और कभी भानु के समान ग्रहण में भी आजावे तो थोड़ेही काल में फिर उ-ग्रह अर्थात् निर्मल होजावेगा ॥

पं॰ महेश॰- स्वामी जी हिन्दुओं के धर्म प्रचारी ग्रंथों को नहीं मानते कि जिनमें कर्म काण्ड और होमादिक का विधान है किन्तु केवल वेदोंही की तरफ खिचते हैं। इससे मेरी समझ से तो उनको यही उचित है कि वेदों को भी एक तरफ डालकर अपनी युक्ति और बुद्धिही के अनुसार वर्त्ताओ वर्त्ते ॥

स्वा॰ जी- इस जगह पण्डित जी की और भी बढ़कर भूल साबित होती है। तथा जाना जाता है कि उन्होंने प्राचीन सत्य ग्रन्थ कभी देखे भी न हों और कल्पना किया कि देखे हों तो केवल दर्शन मात्र किया हो। नहीं तो खाली तुकें न मिलाते। अब कोई साहब पण्डित जी से पूंछे कि उन्होंने हिन्दु शब्द कौन से ग्रन्थ में देखा है कि जिसके अर्थ गुलाम वा काफिर आदि के हैं॥ और जो कि आर्य्यावर्त्तियों को कलंक रूप नाम यवनादिक की ओर से है। और आर्य्य शब्द जिसके अर्थ श्रेष्ठ के हैं वह वेदों में अनेक ठिकाने मिलता है। सो पण्डित जी नौका में धूर उड़ाते हैं। सो कब हो सकता है। और भूषण को दूषण करके मानते हैं तो माना करो परन्तु विद्वानों और पूर्ण पण्डितों की ऐसी उलटी रीति निज धर्म शास्त्र के विरुद्ध कभी नहीं होगी। आगे वे लिखते हैं कि स्वा॰जी धर्म प्रचारी ग्रंथों को नहीं मानते हैं कि जिनमें कर्म

काण्ड का विधान है तो यह बड़े तमाशे की बात है कि न तो पण्डित जी कभी मुझ से मिलकर चिरकाल विचार किया और न उन्हों ने मेरे बनाये इस ग्रन्थ देखे किन्तु प्रथम ही मेरे मानने न मानने के विषय में अपना सिद्धान्त कर बैठे। तो यह वही बात हुई कि सोवें झोंपड़े में और स्वप्न देखें राज महलों का। क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्व मीमांसा पर्य्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लग भग मानता हूं। तथा कर्म काण्ड के विषय में यह उत्तर है कि मेरा मत वेद पर है। इसलिये जो जो कर्म काण्ड वेदानुकूल है वह सब मानता हूं। उससे विरुद्ध को नहीं क्योंकि वे ग्रन्थ मनुष्यों ने अपने स्वार्थ साधन के निमित्त रच लिये हैं। वे वेद युक्ति वा प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सकते। जो संस्कार आदि मैं मानता हूं वे सब मेरी बनाई हुई वेद भूमिका अंक ३ में तथा संस्कार विधि आदि ग्रन्थ में देख लेना चाहिये। और वे लिखते हैं कि वेदों को भी एक तरफ धरदें केवल अपनी युक्ति वा बुद्धि ही के आधार रहें। तो उत्तर यह है कि मैं वेदों में कोई बात युक्ति विरुद्ध वा दोष की नहीं देखता और उन्हीं पर मेरा मत है। सो यह सब भेद मेरे वेद भाष्य में खुलता जायगा। और विद्वानों का यह काम नहीं कि किसी हेतु से सत्य को त्याग के असत्य का ग्रहण करें॥

पं० महेश०—हिन्दुओं का विश्वास है कि देव वाणी का प्रकाश

परमेश्वर की ओर से वेद पुस्तकों के रूप में हुआ है वा ऋषियों के द्वारा प्रेरणा की गई है परन्तु मेरी समझ से तो दोनों प्रकार ठीक नहीं हो सकता ॥

स्वा॰ जी– इस बात का उत्तर वेद भाष्य की भूमिका अंक १ प्रथम वेदोत्पत्ति प्रकरण में देख लेना चाहिये। परन्तु इतना यहां भी मैं कहता हूं कि आर्य्य लोग सनातन से युक्ति प्रमाण सहित वेदों को परमेश्वर कृत मानते बराबर चले आये हैं। इसका ठीक २ विचार आर्य्य लोग ही कर सकते हैं हिन्दू बिचारों का क्या ही सामर्थ्य है ॥

पं॰ महेश॰– वेद इस विषय में स्वतः प्रमाण हैं कि उनमें बहुधा होम बलिदान आदि का विधान हैं। तथा इसका प्रमाण अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता है कि जिनको स्वामी जी भी मानते हैं। इसलिये वे वेद मत को स्वीकार करके होमादिक से अलग नहीं बच सकते हैं। सिवाय ऐसे मनुष्य के कि जो स्वामी जी की तरह अपनी नवीन रीति से मंत्र भाष्य की रचना करे। देखना चाहिये कि यह स्वामी जी का परिश्रम कैसा वृथा समझा जा सकता है कि जब मैं उनके भाष्य की परीक्षा करूंगा ॥

स्वा॰ जी– वेदों में जो यज्ञादिक करने की आज्ञा है वह सब प्रमाण और युक्ति सिद्ध होने के कारण मैं मानता हूं और सबको अवश्य मानना चाहिये जैसा कि वेद भूमि का अंक ३ के यज्ञ प्रकरण में लिख दिया है। उससे विरुद्ध जो बलिदान आदि आजकल के

लोगों ने समझ रक्खा है यह सब वेद विरुद्ध है। और मेरा भाष्य तो नवीन रीति का नहीं ठहर सकता। क्योंकि वह प्राचीन सत्य ग्रन्थों के प्रमाणयुक्त बनता है। परन्तु पण्डित जी का जो कथन है सो केवल अप्रमाण है और पण्डित जी ने मनके ही गुलगुले खाये हैं। आगे मेरे ग्रन्थ की परीक्षा तो तमाम देश भरको हो ही जावेगी परन्तु पण्डित जी की विद्या तो अभी तुलगई॥

पं॰ मद्देश॰— स्वामी जी का मंत्र भाष्य ही अद्भुत नहीं है किन्तु उनके लिखने की रीति। और व्याकरण भी पण्डितों के आगे हंसी के कराने वाले हैं। तथा कई अशुद्धियां जो उनके परीक्षकों ने निकाली हैं वे इस बात को साफ़ २ सिद्ध करती हैं कि स्वामी जी सत्य का प्रकाश तो नहीं करते किन्तु अपनी कीर्त्ति और नाम की प्रसिद्धि अवश्य चाहते हैं। जैसे कि वे (उपचक्रे) शब्द को पाणिनीके (गन्धनाव क्षे॰) सूत्र से सिद्ध करते हैं यह कभी नहीं हो सकता। यह बात मानी जा सकती है कि उपचक्रे में आत्म ने पद लाया गया है साफ कहने के अर्थ में। परन्तु (उप॰ कृञ्॰) से यह अर्थ नहीं निकल सकता है। और न स्वामी जी का यह अभिप्राय है। क्योंकि वे उसका भाषा में अर्थ करते हैं कि (किया है)॥

स्वा॰ जी॰— इसका उत्तर मैं पण्डित गुरु प्रसाद आदि के तर्कखण्डन के साथ दे चुका हूं और पण्डित जी ने कुछ उन से विशेष पकड़ नहीं की है। २ परन्तु इस बात का भेद सिवाय अन्तर्य्यामी परमेश्वर के जीव नहीं जान सकता कि मैं लोक हित चाहता हूं

वा केवल विजय अर्थात् नाम की प्रसिद्धि है। भाषार्थ में जो शब्द (किया है) लाया गया तो इसका कारण यह है कि भाषा में संस्कृत का अभिप्राय मात्र लिखा है केवल शब्दार्थ ही नहीं क्योंकि भाषा करने वालों केवल यही तात्पर्य्य है कि जिन लोगों को संस्कृत का बोध नहीं है उनको विना भाषार्थ के यथार्थ सहाय वेद ज्ञान नहीं हो सकेगा॥ इसलिये भला यह कोई बात है कि ऐसी तुच्छ बातों में दोष पैदा करना। जो कि विद्वानों के विचार से दूर है। और (उप.कृञ्) धातु का अर्थ है (उपकार, और किया ये दोनों अर्थ भी भूत काल की क्रिया का बताता है कि ईश्वर ने जीवों के हित के लिये वेदों का उपदेश किया है और ठीक ठीक घट सकता है॥

पं॰ महेश॰ — खैर ये तो साधारण बातें थीं परन्तु अब मैं भारी भारी दोषों पर आता हूं मंत्र भाष्य के प्रथम संस्कृत खण्ड में अग्नि मी के पुरोहितम्। इसके भाष्य में स्वामी जी ने अग्नि शब्द से ईश्वर का ग्रहण किया है। जब कि प्रसिद्ध अर्थ अग्नि शब्द के सिवाय आग के दूसरे कोई नहीं ले सकता। तथा सायणाचार्य्य वेद के भाष्य कार की इसी विषय में साक्षी वर्त्तमान है। स्वामी जी अपने पक्ष में शतपथ ब्राह्मण और निरुक्त आदि को प्रमाण मानते हैं। परन्तु क्या ये भाष्य आदि अग्नि शब्द से परमेश्वर के अर्थ की पुष्टि कर सकते हैं अर्थात् कभी नहीं क्योंकि जो २ शब्द उनमें ईश्वरार्थ में लिखे हैं उनमें अग्नि

शब्द का नाम भी नहीं है। फिर स्वा॰जी इसी पक्ष में ऐतरेयब्रा॰ का प्रमाण धरते हैं कि। अग्निर्वै सर्वा देवताः। अ॰१। पं॰१। यह कुछ संबन्ध नहीं है किन्तु (दीक्षणीयेष्टि यज्ञ) में लग सकता है मैं यह आगे का वाक्य डाकटर हाग साहब के टीका सहित लिखता हूं॥

स्वा॰जी- अब पण्डित जी की ऐसी पकड़ से मालूम हो गया कि उनको संस्कृत ग्रन्थ समझने का बहुत ही बोध है और विद्वानों को चाहिये कि पण्डित जी की खातर से मान भी लें कि वे द विद्या के बड़े प्रवीण हैं। सत्य तो यह है कि उन्होंने प्राचीन ऋषि मुनियों के ग्रन्थ कभी नहीं देखे और उनको ठीक २ अर्थ समझने का बिलकुल ज्ञान नहीं क्योंकि वे जिन २ ग्रन्थों अर्थात् वेद शतपथ और निरुक्त आदि के प्रमाण मैंने वेद भाष्य में लिखे हैं उनको ठीक २ विचारने से आपने के समान जान पड़ता है कि अग्नि शब्द से आग और ईश्वर दोनों का ग्रहण है। जैसे देखो कि। इन्द्रं मित्रं वरुण॰। तदेवाग्निस्तदादित्य॰। अग्निर्होता कवि॰। ब्रह्म ह्यग्निः। आत्मा वा अग्निः। इत्यादि विद्या नेत्र से इन पांच प्रमाणों में अग्नि शब्द से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। अथवा अग्निः प्रजाश्च प्रजापतिश्च। और इस प्रमाण में प्रजा शब्द से भौतिक अग्नि और प्रजापति शब्द से परमेश्वर लिया जाता है। इसी प्रकार। संवत्सरोऽग्निः। इत्यादि प्रमाणों में अग्नि शब्द से ठीक २ परमेश्वर का ग्रहण होता है। तथा। अग्निर्वै सर्वा

देवता। इस वचन में भी परमेश्वर और सांसारिक अग्नि का ग्रहण होता है। क्योंकि जहां उपास्य उपासक प्रकरण में सर्वदेवता शब्द से अग्निसंज्ञक परमेश्वर का ग्रहण होता है इसमें यजुका प्रमाण दिया है क्योंकि (यज्ञोपास्यत्वेन सर्वा देवता उच्यन्ते तच्चब्रह्मात्मैव ग्राह्यः) जो ये इस पंक्ति का अभिप्राय समझते तो उनको अग्नि शब्द से परमेश्वर के ग्रहण में कभी भ्रम न होता (तथा निरुक्त से भी परमेश्वर और भौतिक इन दोनों का यथावत् ग्रहण होता है (देवा एकतो (अग्रणीः) इस शब्द से उत्तम परमेश्वरही माना जाता है इसमें कुछ संदेह नहीं और दूसरा हेतु यह है कि। इतात्। इस शब्द से अग्निनाम ज्ञानस्वरूप परमेश्वरही का ग्रहण होसकता है क्योंकि (इण गतौ, इस धातु से यहां ज्ञानार्थही अभिप्रेत है। (दग्धात्। इस पद से केवल भौतिक अग्नि लिया जायगा। परमेश्वर नहीं। तथा (अक्तात्, और (नीतात्। इनदोनों से परमेश्वर और भौतिक दोनों लिये जाते हैं। क्योंकि जो (इण, धातु से ऋषि का प्राप्ति और गमन अर्थही लेने का अभिप्राय होता तो (अक्तात्, दग्धात्, नीतात्, ऐसे शब्दों का ग्रहण नहीं करते तथा जो अग्निशब्द से धात्वर्थ ग्रहण में यास्क मुनि का अभिप्राय नहीं होता तो पृथक् २ धातुओं को नहीं गिनाते और। (अग्निर्वै सर्वा देवताः। इति निर्वचनाय। इस वचन का अर्थ निरुक्त कार करते हैं कि जिस को बुद्धिमान् लोग अनेक नामों से वर्णन करते हैं। जोकिएक

अद्वितीय सब से बड़ा सबका आत्मा है उसी को अग्नि कहते हैं ॥ उत्तरे ज्योतिषी एतेन नाम धेयेन भजेते ॥ इस वचन में अग्नि शब्द से परमेश्वर और भौतिक दोनों का ग्रहण होता है क्योंकि इस अग्नि नामधेय से दोनों उत्तर ज्योति अर्थात् अनन्त ज्ञान प्रकाश युक्त परमेश्वर जोकि प्रलय के उत्तर सब से सूक्ष्म, तथा आधार है। उसका और जो विद्युत् रूपगुणवाला सबसे सूक्ष्म स्थूल पदार्थों में प्रकाशित और प्रकाश करने वाला भौतिक अग्नि है इन दोनों का यथावत् ग्रहण होता है इसी प्रकार (अग्निः पवित्र मुच्यते) इत्यादि में भी अग्नि शब्द से दोनों ही को लेना होता है तथा (प्रशासितारं॰) जो सब को शिक्षा करने वाला, सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म, स्वप्रकाश स्वरूप, समाधियोग से जानने योग्य पर पुरुष परमात्मा है विद्वान् उसी को परमेश्वर जानें फिर (एनमे के वदन्त्यग्निं॰) विद्वान लोग अग्नि आदि नामों करके एक परमेश्वर को ही कहते हैं ॥ ऊपर के सब प्रमाण अग्नि अर्थात् परमेश्व में प्राचीन सत्य ग्रन्थों की साक्षी से ठीक २ घटते हैं परन्तु जो पण्डित जी के घर के निराले ग्रन्थ हैं उनमें न होगा। और कदाचित् वे कहें कि निघण्टु में जो ईश्वर के नाम हैं उनमें अग्नि शब्द नहीं आता इससे मालूम हुआ कि अग्नि परमेश्वर का वाची नहीं तो समझना चाहिये कि जैसे निघण्टु के अ॰ २ खं॰ २२ में जो (एष्टी। अर्य्यः। नियुत्वान्। इनः।) ये चार ईश्वर के अप्रसिद्ध

नाम हैं और यह नहीं हो सकता कि जो नाम ईश्वर के निघण्टु में हों वेही मानें जायें। औरों को विद्वान् लोग छोड़ देवें। परमेश्वर के तो असंख्यात नाम हैं और आप का क्या चार ही नाम ईश्वर के नहीं समझते और क्या निघण्टु में न लिखने से ब्रह्म, परमात्मा आदि ईश्वर के नाम नहीं हैं। यह पण्डितजी की बिलकुल भूल है जैसे ब्रह्म आदि ईश्वर के नाम निघण्टु के बिना लिखे भी लिये जाते हैं वैसे अग्नि आदि भी परमेश्वर के नाम हैं। इस पूर्वपक्ष में जो कुछ अवश्य था संक्षेप से लिख दिया। यह बात वेद भाष्य के अंक में विस्तार पूर्वक सिद्ध कर दी है वहां देख लेना। पण्डित जी आर॰ गिरिफिथ साहब और सी॰ एच॰ टानी साहबों के पीछे २ चलते हैं सो इसका कारण यह है कि पं॰ जी ने महीधरादि की अशुद्ध टीका देख ली हैं। और उक्त साहबों ने प्रोफेसर विलसन आदि के उन्हीं अशुद्ध भाष्यों के उलथे अंगरेज़ी में देख लिये होंगे उन से क्या हो सकता है। जब तक सत्य ग्रंथों और मूल मंत्रों को न देखें समझें तब तक वेद मंत्रों का अभिप्राय ठीक २ जान लेना लड़कों का खिलौना नहीं है। इसी के समान पं॰ जी का और कथन भी है। इसलिये अब दूसरी बात का उत्तर लिखते हैं॥

अग्निर्वै सर्वा देवताः। देवानाम वभो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवता इत्यादि पर जो पण्डित जी ने लिखा है सो भी अयुक्त है क्योंकि। वेद मंत्रादि प्रमाणों को छोड़ कर अग्निर्वै सर्वा इस पद पर लिखने से मालूम होता है कि पं॰ जी ने

भाष्य की परीक्षा तो न की किन्तु छल अवश्य किया है. सो भी पण्डित जीने इस वाक्य को तो लिखा परन्तु उसके अभिप्राय को यथार्थ नहीं जाना क्योंकि इसका अभिप्राय यह है कि सब कर्म काण्ड के अग्निहोत्रादि अश्वमेध पर्य्यन्त होम क्रिया में अग्नि मंत्र प्रथम और विष्णु मंत्र का पश्चात् उच्चारण करते हैं जहां कहीं व्यवहारिक ३३ देव गिनाये हैं वहांभी अग्नि प्रथम और विष्णु अन्त में गिनाया है। तथा। (अग्निर्देवता०) इस मंत्र में भी अग्नि का प्रथम और वरुण का अन्त में ग्रहण किया है। सो ऐतरेय ब्राह्म० के पं०१ अ०२ कं०१० में लिखा है कि (त्रयस्त्रिंशद्वै देवा अष्टौ वसव इत्यादि। तथा शतपथ ब्राह्मण में भी इस बात की व्याख्यावेद भाष्य की भूमिका के अंक ३ के पृष्ठ ५८ की पंक्ति ३१ में देवता शब्द से किस २ को किस २ गुण से ग्रहण करना लिखा है वहां देख लेना। तथा उसी अंक ३ के पृष्ठ ६६ पंक्ति ७ में अग्नि से आरम्भ करके प्रजापति यज्ञ अर्थात् विष्णु में गिनती पूर्ण करदी है। इसलिये अग्निर्वै०। इस वचन में अग्नि को प्रथम और विष्णु को अन्त में गिना है। सो पूर्व लिखित ग्रंथ में देखने से सब शंका निवारण होजायगी। तथा उक्त साहब लोगों और पण्डितजी की यह भी शंका निवृत्त होजावेगी कि वेदों में एक के सिवाय दूसरा ईश्वर कोई भी नहीं है किन्तु जिस २ हेतु से जिस पदार्थ का नाम देव धरा है सो २ वहां अर्थात् अंक ३ में देख लेना। और डाक्टर

एम॰ साहब की अशुद्ध टीका काजो हवाला देते हैं तो यह पण्डित जी को एक लज्जा की बात है। कि प्राचीन सत्य संस्कृत ग्रन्थों को छोड़ कर इधर उधर कस्तूरिये हिरन के समान भूलते और भटकते हैं डाक्टर एम॰ साहब वासी॰ एच॰ टानी साहब वा और आरगीरिफिथ॰ साहब आदि कुछ ईश्वर नहीं किजो कुछ वे लिख चुके वह बिना परीक्षा वा विचार के मान लेने योग्य ठहरे। क्या डाक्टर एम॰ हग॰ साहब हमारे आर्य्य ऋषि मुनियों से बढ़कर हैं। कि जिनको हम सर्वोपरि मान कर निश्चय कर लें और प्राचीन सत्य ग्रन्थों को छोड़ देवें जैसा कि पण्डित जीने किया है। जो उन्हों ने ऐसा किया तो किया करो मेरीदृष्टि में तो वेजो कुछ हैं सोही हैं। तथा इस काण्ड को में भी (यज्ञस्याने) वचन में आदि में अग्नि मंत्र और अन्त में विष्णु मंत्र का प्रयोग किया जाता है फिर इन दोनों के बीच में व्यवहार के सब मंत्र देव गिने हैं। अग्नि को प्रथम इसलिये गिना है कि प्रथम जिन २ द्रव्यों का वायु और वृष्टि जलकी शुद्धि के लिये अग्नि में होम किया जाता है वेसब परमाणु रूप होकर विष्णु अर्थात् सूर्य्य के आकर्षण से वायु द्वारा आकाश में चढ़ जाते हैं फिर मेघ मण्डल में जल वृष्टि के साथ उतर कर बाकी जो बीच ३० देव गिना दिये हैं उन सभों को लाभ पहुंचाते हैं। इस अभिप्राय को पण्डितजी नहीं समझे हैं॥

पं॰ महेश॰। अब ऊपर के वचन से साफ जानाजा सकता है

कि वेद में एक परमेश्वर की पूजा नहीं किन्तु निस्सन्देह देवता विधान पाया जाता है। और उन देवताओं को वलिदान आदि पदार्थों का भेंट करना लिखा हुआ है। इस वाक्य में यह बात सिद्ध नहीं होसकती कि। अग्नि शब्द का अर्थ ईश्वर है किन्तु उस में ईश्वर का जिकर भी नहीं है। इस बात की सावूती में स्वामी जी एक प्रमाण देते हैं (यज्ञोपास्यत्वेन) अर्थात् जहां सब देवों का पूजन कहा है वहां परमेश्वर को समझना चाहिये। फिर इसकी पुष्टि में स्वामी जी मनु का प्रमाण देते हैं (आत्मैव देवताः सर्वाः) अर्थात् आत्मा सब देव हैं और आत्माही में सब संसार स्थित है यह नहीं समझ सकते कि यह वचन स्वामीजी का मन प्रसन्न प्रमाण की पुष्टिता कैसे कर सकता है॥

स्वा॰ जी–ऊपर के वचनों से ईश्वर का नाम अग्नि सिद्ध दिया गया है। परन्तु पक्षपात छोड़ के विद्या की आंख से ने वाले को स्पष्ट मालूम होता है कि निस्सन्देह अग्नि ईश्वर का नाम है। वेदों में अनेक ईश्वर का विधान कहीं नहीं है। र जो देवता शब्द से सृष्टि के भी पदार्थों का विधान है उसका उत्तर ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के अंक ३ के देवता विधान प्रकरण को देखने से अच्छी प्रकार जान लेना अर्थात् जिस २ गुण और अभिप्राय से सृष्टि के पदार्थों का नाम देवता रक्खा गया है उसको देख लेना चाहिये क्योंकि वहां यह बात अनेक प्रमाणों से सिद्ध कर दी है परन्तु चारों वेद में उनको ईश्वर कहीं नहीं

और ईश्वर के तुल्य पूजना कहा है किन्तु उनकी दिव्य
... से व्यवहार मात्र में देवता संज्ञा मानी है। चारों वेद में ए-
क से दूसरा ईश्वर कहीं प्रति पादन नहीं किया है। तथा इन्द्र
अग्नि और प्रजापति आदि शब्दों से ईश्वर और भौतिक दो-
नों का प्रति पादन किया है। और जो पण्डित जी लिखते हैं कि
अग्नि शब्द का अर्थ ईश्वर नहीं है किन्तु उस स्थान में जिकर
भी नहीं इसका उत्तर यह है कि इसमें वेद वेदान्त ब्राह्मण त-
था मेरा दोष नहीं किन्तु इसमें पण्डित जी के शास्त्रों में न्यून अ-
भ्यास का दोष है। क्योंकि जो मनुष्य वेदादि शास्त्रों का यथार्थ अ-
र्थ न समझा होगा उसके उलटे ज्ञान हो जाने का संभव है। वेदों में
एक ईश्वर के प्रति पादन में भूमिका अंक ४ मे ८९ के पृष्ठ से ९२
तक ब्रह्म विद्या प्रकरण की समाप्ति पर्यन्त देखना चाहिये। (
आत्मैव देवताः सर्वाः) इसका अभिप्राय पण्डित जीने ठीक २
नहीं समझा है। क्योंकि इसका मतलब यह है कि आत्मा अर्था-
त् परमेश्वर ही अग्नि आदि सब व्यवहार के देवताओं का रचन
पालन और विनाश करने वाला है तथा अग्निर्देवता-इत्यादि
प्रकरण में व्यवहार के देवता और ऋषि आदि नामों से परमेश्वर
का भी ग्रहण है क्योंकि (सर्वमात्मन्यवस्थितम्) इस वचन से सिद्ध
होता है कि सब जगत का आत्मा जो परमेश्वर है सो उसी में स्थिर
है और वही सब में व्यापक है इस अभिप्राय से यह बात सिद्ध हो
ती है कि ऋषि परमेश्वर का भी नाम है इससे मेरा कहना यथार्थ

पुष्टि रखता है॥

पं० महेश- ऐतरेय ब्रा० के प्रमाण से अग्नि और विष्णु दोनों को मुख्य करके पूजनीय माने हैं क्योंकि येही यज्ञ में आदि के देव हैं जिनके द्वारा सब बीच वालों को भाग पहुंचता है इसलिये इन्हीं दोनों की सब देवों के तुल्य स्तुति की गई है॥ इसपर स्वामी जी ऐतरेय ब्रा० का जो प्रमाण देते हैं सो उनके कथन की पुष्टि तो नहीं करता किन्तु विरुद्ध पड़ता है॥

स्वा० जी- अबजो पंजी (अग्निर्वै सर्वा देवताः) इसमें भ्रांत हुए हैं सो ठीक नहीं और जो (अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः) इत्यादि ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण धरा है इसका अर्थ टीक २ पण्डित जी नहीं समझे हैं इसका अभिप्राय यह है कि (अग्निर्वै सर्वा देवताः। विष्णुः सर्वा देवताः) इसका भी मनु के प्रमाण समान अर्थ होने से मेरे अभिप्राय की पुष्टि करता है और जहां भौतिक वा मंत्रही देवता लिये गये हैं वहां पूरे डाल आदि करने की क्रिया द्रव्य यज्ञ में संघटित यथावत् की गई है क्योंकि जब प्रथम अग्नि में होम किया जाता है और उससे सब द्रव्यों के रस और जल आदि के परमाणु पृथक २ होजाते हैं तब वे इनके होके सूर्य्य के आकर्षण से वायु के साथ मेघ मण्डल में जाके रहते हैं फिर वे ही मेघाकार संयुक्त होकर वृष्टि द्वारा पृथ्वी आदि मध्यस्थ देव संज्ञक व्यवहार के पदार्थों को पुष्ट करते हैं इसका नाम भाग और

बलिदान है। तथा इसी कारण अग्नि को प्रथम और सूर्य को अन्त में माना है। ऐसेही अग्नि को सूक्ष्म और सूर्यलोक को अग्नि का बड़ा पुंज समझा है। इत्यादि अभिप्राय से यह पंक्ति ऐतरेय ब्रा० में लिखी है जिसको पं० जी ने न जानकर मेरे लेखपर विरुद्ध सम्मति दी है॥

पं० महेश०— निरुक्त भी कुछेकही साक्षी देता है स्वामी जी (अग्निः कस्माद् अग्रणी र्भवति०) इत्यादि निरुक्त का प्रमाण धरते हैं कि जिसमें अग्निशब्द की साधना की गई है। कई धात्वर्थ के बल भौतिक अग्नि के वाची हैं और स्वामी जी भी इसबात को मानते हैं और कहते हैं कि सिवाय भौतिक के अग्नि शब्द से ईश्वर का भी ग्रहण होता है और यह अर्थ (अग्रणी) शब्द से लेते हैं। जैसा कि निरुक्त कार समझता है कि अग्नि शब्द, अग्र-नी-से मिलकर बना है निरुक्त कार इस शब्द के कुछ विशेष अर्थ नहीं करता है। शतपथ ब्रा० जिसको स्वामी जी मानते हैं विशेष अर्थ बताता है परन्तु ईश्वर के नहीं यद्यपि वे कुछ कहते हैं लेकिन सिवाय भौतिक के दूसरा अर्थ नहीं हो सकता जैसे॥

स्वा० जी— अब जो पण्डित जी लिखते हैं कि निरुक्त कार भी कुछेकही संमति देता है सो नहीं क्योंकि निरुक्त में अग्नि शब्द से परमेश्वर और भौतिक दोनों अर्थों का यथावत् ग्रहण किया है। तथा उसमें अग्निशब्द का साधुत्व नो कुछ भी नहीं लिखा है किन्तु धात्वर्थ के निर्देश से अर्थ प्रतीति

कराई है क्योंकि शब्दों का साधुत्व व्याकरण काही विषय है निरुक्त का नहीं। इसलिये उसमें रूढ़ि यौगिक और योगरूढ़ि शब्दों का निरूपण मुख्य करके किया गया है जैसे कि (इतात्) (अक्तात्) (दग्धात्) वा (नीतात्) इनमें (इण्) धातु गत्यर्थक (अंजू) व्यक्त्याद्यर्थ (दह) भस्मी करणार्थ और (णीञ्) प्रापणार्थ दिखाने से विद्वानों को ऐसा भ्रम कभी नहीं होसकता है कि अग्नि शब्द से परमेश्वर और भौतिक दोनों का ग्रहण नहीं है क्योंकि (इ-ण्) और (अंजू) इन धातुओं के गत्यर्थ होने से ज्ञान, गमन, प्राप्ति, ये तीनों अर्थ लिये जाते हैं। इनमें ज्ञान और प्राप्त्यर्थ से परमेश्वर तथा गमन और प्राप्त्यर्थ से भौतिक पदार्थ ये दोनों ही लियेजाते हैं और (अग्रणी) शब्द तथा (अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते। गं नयति) इन के अभिप्राय से अग्नि शब्द परमेश्वर और (अक्नोपयति न स्ने-यति) इससे भौतिक पदार्थ में लिया जाता है यह निरुक्त का अ-भिप्रायार्थ है। मंत्र भाष्य के दूसरे पृष्ठ में ठीक २ लिख दिया गया है। जो उसको पण्डित जी यथार्थ विचारते तो इस वेद भाष्यपर ऐसी विरुद्ध संमति कभी न देते क्योंकि निरुक्त कारने पूर्वोक्त प्र-कार से दोनों अर्थ का विशेष अच्छी तरह दिखला रक्खा है परन्तु जो कोई किसी के लेख का अर्थ यथावत् नहीं समझते उनको उसके विशेष वा सामान्य अर्थ का ज्ञान कभी नहीं होसकता॥

पं० महेश।—(प्रजापतिर्हि वाइदमग्र-) हमारी मुराद यह नहीं है कि हम शतपथ ब्राह्मण में अग्नि शब्द भौतिक का वाची हैं

किन्तु मैं यह बताता हूं कि पूर्वोक्त वाक्य से निश्चय होता है कि अग्नि सिवाय आग के दूसरा अर्थ नहीं देती है॥

स्वा॰जी- पंडित जी का कथन है कि हमारी मुराद यह नहीं है कि हम शतपथ ब्राह्मण में अग्नि शब्द भौतिक का वाची ढूंढें इत्यादि। इसका उत्तर यह है कि मैं पूर्वोक्त प्रकार अग्नि शब्द से परमेश्वर और भौतिक दोनों अर्थों को लेता हूं सो वेदादि शास्त्र के प्रमाण से निर्भ्रमता के साथ सिद्ध है। परन्तु पण्डित जी का अभिप्राय जो अग्नि शब्द से परमेश्वर के ग्रहण में विरुद्ध है उसका हेतु यह मालूम पड़ता है कि पण्डित जी बाल्यावस्था से लेकर आज पर्य्यन्त अग्नि शब्द से भौतिक अर्थात् चूल्हे आदि में जलने वालीही आगि को सुनते और देखते आये हैं इसलिये वहींतक उनकी दौड़ है। परन्तु मैं उनसे मित्र भाव से कहता हूं कि वे वेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग, और ब्राह्मण आदि सनातन आर्ष ग्रन्थों के अर्थ जानने में अधिक पुरुषार्थ करें कि जिससे ऐसी २ तुच्छ शंका हृदय में उत्पन्न न हों क्योंकि जो २ शतपथ के प्रमाण मैंने वेदभाष्य में अग्नि शब्द से परमेश्वर के ग्रहण विषय में धरे हैं वे क्या शतपथ के नहीं हैं जो शंका हो तो उक्त जगह पुस्तक में देख लेवें और जिस वाक्य की पंक्ति का प्रमाण पण्डित जी ने धरा है उसमें का मुख्य पाठ उन्होंने पहिलेही उड़ादिया इस चालाकी को देखना चाहिये कि

१ तद्यदेनं मुखादजनयत तस्मादन्नादो ऽग्निः सयो हैवमेतमग्नि

मन्नादं वेदान्नादो हैव भवति) इसमें अन्ना शब्द अग्नि के वाची है और (अहमन्न महमन्न महमन्नम्) अहमन्नादो३ हमन्नादो३हम· न्नादः) यह तैत्तिरीय उपनिषद् का वचन परमेश्वर के विषय में है अर्थात् वह उपदेश करता है कि मैं ही अन्नाद हूं और अन्नाद अग्नि को कहते हैं इससे यहां भी परमेश्वर का नाम अग्नि आता है और दूसरी चाल पण्डित जी यह भी खेले हैं कि जिस आधी पं· क्ति से शतपथ में अग्नि शब्द से परमेश्वर लिया है उस पाठ· को अपने पुस्तक में नहीं लिखा देखिये कि (प्रजापतिः परमे· श्वरः यत् यस्मात् मुख्यात् प्रकाश मयान्मुख्या त्कारणात् एनं भौतिक मग्निं मजन यत्तस्मात्स परमेश्वरो ऽन्नादो ऽग्निरर्थो ऽ· ग्नि संज्ञो विज्ञेयः। यो मनुष्यो ह इति निश्चये नैव ममुना प्रकारे णैत मन्नादं परमेश्वर मग्निं वेद जानाति ह इति प्रसिद्धे सर ग्वान्नादो भवत्यर्थो दृब्रह्म विद्भवतीति। इस प्रकार से यह· बात निश्चित होती है कि पण्डित जी उन ग्रंथों का अर्थ ठीक २ नहीं जानते और जितना जानते हैं उसमें भी कपट और आ ग्रह से सत्य नहीं लिखते। पण्डित जी को विदित हो कि यहां पाठशालाओं के लड़कों से प्रश्नोत्तर लेखवा उनकी परीक्षा नहीं है इससे जो कुछ वे लिखें सो विचार पूर्वक होना चा· हिये कि उनको किसी की खुशामत वा आग्रह से लिखना उचित नहीं। जो २ शतपथ के प्रमाण मैंने यहां २ लिखे हैं उ· नका अर्थ भी संक्षेप में लिख दिया है उसको ध्यान देकर देख लेवें

मुनि विरजानन्द दाडा
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु. परिग्रहण क्रमांक 271
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

पं॰ महेश॰— अग्निः पृथिवी स्थानः तं प्रथमं व्याख्यास्यामः। पृथ्वी का अग्नि ईश्वर अर्थ में कभी नहीं लिया जा सकता है इस बात को अच्छी तरह प्रकाश करने के लिये कि निरुक्त कार अग्नि शब्द के क्या अर्थ लेता है॥

स्वा॰ जी— फिर जो पण्डित जी ने (अग्निः पृथ्वी स्थानस्तं प्रथमं व्याख्यास्यामः। इसमें अपना अभिप्राय जनाया है कि (क्या पृथ्वी का अग्नि ईश्वर अर्थ में कभी लिया जा सकता है। इस में पण्डित जी से मैं पूछता हूं कि क्या आप अन्तरिक्ष और सूर्य्यादि लोकस्थ अग्नि ईश्वर अर्थ में ग्रहण नहीं करते तथा क्या परमेश्वर के व्यापक होने से पृथिवी स्थान नहीं हो सकता और उनको विचारना चाहिये कि (पृथिवी-स्थानं यस्यसः परमेश्वरो ऽग्निर्भौतिकश्च त्यर्थ द्वयं गृह्यनाम्। इस वचन के अर्थ पर उनका अभिप्राय ठीक नहीं सिद्ध होता क्योंकि इस बात को कौन सिद्ध कर सकता है कि पृथिवी से भिन्न अन्य पदार्थ में भौतिक अग्नि नहीं है जब कि यहां पृथिवी अर्थात् सब सृष्टि भर ली जाती है तथा कार्य्य और कारण रूप को भी पृथिवी शब्द से लेते हैं। फिर उनका अभिप्राय इस बात में शुद्ध कभी नहीं हो सकता। क्योंकि रूप गुण वाला ला पदार्थ अग्नि शब्द से गृहीत होता है और न केवल चूल्हे वा वेदी में धरा हुआ। तथा पृथिवी स्थान शब्द के होने से अग्नि शब्द का ग्रहण परमेश्वर अर्थ में भी यथावत् होता है। जैसे (यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोऽयं

पृथिवी नवेद यस्य पृथिवी शरीरं पृथिवी मन्तरो ऽयमयति नस आत्मा अन्तर्य्याम्य मृतः। यह वचन शत० कां०१४अ० ६ब्रा०५। कण्डिका ७ का है कि जिसमें पृथिवी स्थान शब्द से परमेश्वर का ग्रहण किया है क्योंकि जहां कहीं अन्तर्य्यामी शब्द से परमेश्वर की विवक्षा होती है वहां एक जीव के हृदय की अपेक्षा से भी परमेश्वर का ग्रहण होता है जैसे (स त आत्मा ऽन्तर्य्याम्य मृतः) अर्थात् गौतम ऋषि से याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे गौतम जो पृथिवी में ठहर रहा है और उससे पृथक् भी है तथा जिसको पृथिवी नहीं जानती जिसका शरीर के समान पृथिवी है जो पृथिवी में व्यापक होकर उसको नियम में रखता है वही परमेश्वर अमृत अर्थात् नित्य स्वरूप से रजी वात्मा का अन्तर्य्यामी आत्मा है। इतने ही से बुद्धिमान समझ लेंगे कि पण्डित जी निरुक्त का अभिप्राय कैसा जानते हैं॥

पं० महेश०— तथा देवता विषय में उसका कैसा विचार था। आगे के प्रमाण अंग्रेजी टीका सहित लिखते हैं (यत्काम ऋषिर्यस्यां०) जिस मंत्र से जिस देवता की स्तुति की जाती है वही उस मंत्र का देवता है (माहाभाग्याद्देवताया:) अर्थात् देवता एक ही है परन्तु उसमें बहुत सी शक्ति होने के कारण अनेक रूपों में पूजा जाता है उसके सिवाय और २ देव उसके अंग हैं प्राचीन अनुक्रमणि का कार भिन्न २ मंत्रों पृथक् २ देवता

विभाग करता है और इसका प्रमाण स्वामीजीने माना है देखो पृष्ठ १ पं०। २। तथा पृ० २३ पं० १४। इसी विषय को। परन्तु बात काट के उसके असली अर्थ के विरुद्ध कहते हैं कि सब मंत्रों का देवता परमेश्वर है अग्नि वायु आदि नहीं॥ यह हिन्दुओं का बड़ा सत्यानुसार धर्म है कि अनेक देवते एक ईश्वरही के प्रकाश रूप हैं। इस बात का प्रमाण ऐतरेयोपनिषद् में लिखता है जिस के स्वामी जी भी मानते हैं जैसे (निहितमस्माभिरेतद्यथा वद्धक्ष मनसीत्यथोत्तर प्रश्न मनु ब्रूहीति॰॥ इत्यादि। ४।५-६॥

स्वामीजी — (यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः समंत्रोभवति) इसका उत्तर भूमिका अंक ३ के देवता विषय में देख लेना वहां अभिप्राय सहित लिख दिया है अर्थात् प्रकार से व्यवहार के पदार्थों की भी देव संज्ञा मानी है। पूज्यो पास्य बुद्धि से नहीं। अब प्राचीन अनुक्रमणि का कार जो भिन्न २ देवता मानता है सोभी इस अभिप्राय से है कि इस मंत्र-का अग्नि देवता इत्यादि लेख से कुछ आपकी बात की पुष्टि नहीं होती क्योंकि वहां केवल नाम मात्र का प्रकाश है विशेष अर्थ का नहीं वैसेही अग्नि शब्द के पूर्वोक्त प्रकार से घटित दोनों अर्थ लिखे जाते हैं तथा सब मंत्रों का देवता परमेश्वर इस अभिप्राय से है कि सब देवों का। देव पूजनीय और उपासना योग्य एक अद्वितीय ईश्वरही है सो यथावत् देवता प्रकरण में लिख दिया है। वहां देख लेना कि व्यावहारिक अग्नि वायुको

देवता किसलिये और परमेश्वर किस प्रकार माना जाता है। ऐसे ही सब जगत को ब्रह्म मानना तथा ब्रह्म को जगत् रूप समझना यह हिन्दुओं की बात होगी आर्य्यों की नहीं। हम लोग आर्य्यावर्त्तवासी ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमस्थ ब्रह्मा से लेकर आजपर्य्यन्त परमेश्वर को वेदरीति से ऐसा मानते चले आये हैं कि वह शुद्ध सनातन, निर्विकार, अज, अनादि, अनादि स्वरूप जगत् के कारण से कार्य्य रूप जगत् का रचन पालन और विनाश करने वाला है। और हिन्दु उसको कहते हैं कि जो वेदोक्त सत्य मार्ग से विरुद्ध चले। इसमें पंडित जी ने जो मैत्र्युपनिषद् का प्रमाण धरा है सोभी बिना अर्थ जाने हुए लिखा है क्योंकि वहां ब्रह्म की उपासना का प्रकरण है। तद्यथा (यस्तपसाऽपहतपाप्मा। ओं ब्रह्मणो महिमेत्येवैतदाह यः सुयुक्तोऽजस्रं चिन्तयति तस्माद्विद्यया तपसा चिन्तया चोपलभ्यते ब्रह्म। स ब्रह्मणः पर एता अधिदैवत्वं देवेभ्यश्चेत्यक्षय्यमपरिमितमनामयं सुखमश्नुते य एवं विद्वाननेन त्रिकेण ब्रह्मोपास्ते) जो पण्डित जी इस प्रकरण का अर्थ ठीक २ समझ लेते तो परमेश्वर का नाम अग्नि नहीं ऐसा कभी न कह सकते क्योंकि उसी ब्रह्म के अग्नि आदि नाम यहां भी हैं और ब्रह्म की तनू अर्थात् व्याप्य जो पूर्वोक्त स्थान शतपथ ब्राह्मण में अन्तर्यामी पृथिवी से लेकर जीवात्मा पर्य्यन्त २४ तनु अर्थात् अन्वय और व्यतिरेकालंकार से शरीर शरीरी अर्थात् व्याप्य व्यापक संबन्ध

परमेश्वर का जगत् के साथ दिखलाया है सो देख लेनो। उसी शत पथ में पांचवे ब्राह्मण की ३१ कण्डिका में (अदृष्टो द्रष्टा श्रुतः श्रोता। मनो मन्ता। विज्ञातो विज्ञाता। नान्योऽस्ति द्रष्टे त्यादि) व्याप्य व्यापक संबन्ध पूर्वोक्त अलंकार से यथावत् दिखलादिया है इससे (ब्रह्मखल्विदं बाव सर्वम्) इसका अर्थ इस प्रकार से है कि ब्रह्म केवल एक चेतन मात्र तत्व है जैसे किसी ने किसी से कहा कि यह सुवर्ण खरा है तो इस वाक्य का अभिप्राय है कि इस सुवर्ण में दूसरे धातु का मेल नहीं इसी प्रकार जैसे कार्य्यजगत् के संघातों में अनेक तत्वों का मेल है वैसा ब्रह्म नहीं किन्तु वह भिन्न वस्तु है तथा तात्स्थ्योपाधि से यह सब जगत् ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मस्थ है और ब्रह्म सर्व थिमस्थ भी है यह इस वचनका ठीक अर्थ है क्योंकि फिर इसी के आगे यह पाठ है कि (पाया स्या ग्यास्तन्व स्ता अभिध्या ये दर्च येम्नि नु याच्चा तस्ता भिः स हैवो पर्य्यु पा लोकेषु चा त्य य कत्स्न क्षय एकत्व मेति पुरुषस्य पुरुषस्य) अर्थात् जो विद्वान् पुरुष अपने आत्मा में ब्रह्म की उपासना ध्यान और उसी की अर्चा कर अपने हृदय के सब दोषों को अलग करे इसके उपरान्त जब अपने अन्तः करण से शुद्ध होकर मुक्ति पा चुकता है तब वह उन्ही पूर्वोक्त तनुओं के सहित उपरि सब लोकों के बीचा बीच रहता हुआ अन्त में परमेश्वर की सत्ता मात्र को प्राप्त हो जाता है। सब मुक्त पुरुषों के समीप रहता हुआ अकथ नीय परम आनन्द में किलोल करता है और

करना स्तुति कहाती है सो जड़ और चेतन दोनों में यथावत् घट-
ती है इसी प्रकरण में (एकस्य सतोऽपि बा पृथग्वा स्तु: पृथगपिस्तु
तयो भवन्ति तथाऽभिधानानि ।) इस पंक्ति का अर्थ पण्डित जीने न
विचारा होगा नहीं तो इनने आडम्बर का लेख क्यों करते क्योंकि देखो
(तासां माहाभाग्या देकैकस्यापि बहूनि नाम धेयानि भवन्ति ।) इ-
सका अभिप्राय यह है कि अग्न्यादि संसारी पदार्थों में भी ईश्वर की
रचना से अनेक दिव्य गुण हैं कि जिनके प्रकाश के लिये वेदों में उ-
न पदार्थों के अग्न्यादि कई २ नाम लिखे हैं । तथा वेही नाम गुणा
नुसार एक अद्वितीय परमेश्वर के भी उन्हीं पृथक् २ गुण युक्त नामों
से परमेश्वर की स्तुति होती है तथा उसी के वेदों में सर्व सुख दाय-
क स्वयं प्रकाश सत्य ज्ञान प्रकाशक नाना प्रकार के व्याख्यान लिखे
हैं इस प्रकार सब सज्जन लोगों को जान लेना चाहिये कि अग्न्यादि
नामों से पूर्वोक्त दोनों अर्थों का ग्रहण होता है वा केवल एक का
नहीं और जो (तिस्र एव देवता इत्युक्तं पुरस्तात्सां भक्ति साहचर्य्यं
व्याख्यास्यामः ।) इसका अभिप्राय यह है कि उन व्यावहारिक दे-
वताओं का जुदापन (साहचर्य्यम् ।) अर्थात् संयोग दो प्रकार का
होता है एक समवाय संबन्ध दूसरा संयोग संबन्ध । समवाय नि-
त्य गुण गुणी आदि में होता है और संयोग संबन्ध गुणी और गुणि
यों का होता है जैसे जगत् के पदार्थों के स्वाभाविक और नैमित्ति-
क संबन्ध में होता है वैसेही परमेश्वर में भी जान लेना कि वह
अपने स्वाभाविक गुण और सामर्थ्यादि के साथ समवाय और

जगत् के कारण कार्य्य तथा जीव के साथ संयोग संबन्ध अर्थात् व्याप्य व्यापकतादि प्रकार से है इस वचन में भी परमेश्वर का त्याग कभी नहीं हो सकता। तथा जैसे भौतिक अग्नि का काम व्यावहारिक देवता ओं को जल चढ़ाना वा पहुंचाना है तथा मंत्र देव और दिव्य गुणों को जगत् में प्राप्त करना है वैसे ही सब जीवों को पाप पुण्यों के फल पहुं चाना और ज्ञानानन्दी मोक्ष रूप यज्ञ में धार्मिक विद्वानों को हर्षयुक्त करदेना परमेश्वर का काम है। (अग्निः पृथिवीस्थानः) इसकी व्याख्या पूर्व कर आये हैं। और (अग्निमीळे॰। इसकी व्याख्या निरुक्त के अनुसार इसी मंत्र के भाष्य में लिखदी है परन्तु वहां भी दोही अग्नि लि ये हैं क्योंकि एक अध्येषणा कर्मा अर्थात् परमेश्वर और भौतिक दू सरा पूजा कर्मा अर्थात् केवल परमेश्वरही लिया है तथा (अग्निः पूर्वे भिर्ऋषिभि॰) इस मंत्र की व्याख्या में निरुक्त कार का स्पष्ट लेख है कि (सन मन्ये तापमे वाग्निरित्यप्यते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्येते) इसका अर्थ यह है कि वह अग्नि जो परमेश्वर का वाची है चूल्हे में प्रत्यक्ष जलने वाला नहीं है। किन्तु जोकि अपने व्याप्य में व्यापक विद्युत् रूप और जो उत्तर अर्थात् कारण रूप ज्योतिः स्वरूप और सब का प्रकाश है तथा जो परमेश्वर अग्नि शब्द से ग्रहण करना क हा है। एक आनन्द स्वरूप परमात्मा का स्वीकार है जैसा कि पूर्वो क्त प्रकार से बुद्धिमान् लोग जान लेंगे कि वे सब प्रमाण जो मैंने इस विषय में लिखे हैं मेरी बात की पुष्टि करते हैं वा नहीं तथा पंडितजी की पकड़ ठीक है वा नहीं। और जोकि येभ्यो नमसूक्त का

प्रमाण लिखते हैं उसका भी अभिप्राय उन्होंने यथार्थ नहीं जाना क्योंकि वहां तो केवल होम किया करने का प्रसङ्ग है। और होता आदि के आसनादिक और अध्वर्य्यु आदि के काम पृथक् २ लिखे हैं इसलिये वहां तत्संसर्गी का ग्रहण नहीं होसकता। क्योंकि जो जिसका काम है उसको वही करे यहां उस सूत्र की प्राप्ति नहीं हो सकती इसलिये उसका लिखना व्यर्थ है। तथा आश्वलायन श्रौत सूत्र के चतुर्थाध्याय में तेरहमी कण्डिका के ७ सूत्र में भी केवल कर्म काण्ड ही की क्रिया के मंत्रों की प्रतीकें धरी हैं वहां भी पंडित जी अग्नि शब्द से परमेश्वर का त्याग कभी नहीं करा सकते किस लिये कि वहां भी वही देवता है। और सब शुभ कर्मों में परमेश्वर ही की स्तुति करना सबको उचित है। वहां मंत्र का पाठमात्र देश किया है अर्थ नहीं इससे इस सूत्र का लिखना पंडित जी को योग्य नहीं था क्योंकि वहां तो केवल क्रिया यज्ञ का प्रकरण है दूसरी बात का नहीं॥

पं॰ महेश॰— (अग्निमी के॰) इस मंत्र की सिद्धि में और अधिक प्रमाण स्वामी जी ने नहीं दिये। परन्तु कई मंत्रों का प्रमाण धर के कहते हैं कि अग्नि से ईश्वर का ग्रहण है सो उन मंत्रों की साधारण विचार परीक्षा से ही मालूम होजाता है कि उनसे स्वामी जी के अर्थ नहीं निकल सकते। पहिला मंत्र (इन्द्रं मित्रं॰) वे उसको इन्द्र मित्र, वरुण और अग्नि आदि नामों से पुकारते हैं। यह मालूम नहीं होता कि इस मंत्र में किसको सन्मुख करके बोलते हैं। निरुक्तकार

कहता है कि वह भौतिक के लिये आया है। कोई सूर्य्य को बताते हैं। ख़ैर कुछ ही हो। परन्तु अग्नि से ईश्वर कभी नहीं लिया जा सकता। और यह जाना गया है कि जब किसी विशेष देवता की स्तुति करते हैं तो उसको शब्द और २ देवताओं के नाम से लाते हैं उसके बल आदि गुण बताने के लिये (देवाग्नि०) शुक्ल युयुर्वेद से कि जिसके समान कृष्ण यजुर्वेद में भी है (देखो। तैत्तिरीय आरण्यक अ०१ प्र०१। इस स्थान में अद्वैतमत मत का प्रति पादन है जैसे देखो, जो सर्वज्ञ पुरुष सदा था. है, और रहेगा जिसका तमाम ब्रह्माण्ड एक अंश मात्र है जिससे वेद उत्पन्न हुए हैं तथा जिससे घोड़ा। गौ। बकरी और खटमल आदि निकले हैं जिसके मन से चन्द्रमा। नेत्रों से सूर्य्य कानों से वायु और प्राण और मुख से अग्नि। वह सर्व व्यापी और सब संसार का आधार है। इसके बाद स्वामी जी मंत्र का प्रमाण देते हैं जैसे (तदेवाग्नि०) अर्थात् अग्नि, सूर्य्य, वायु, आदि सब एक परमेश्वर के ही गुण नाम हैं। जैसे अग्नि शब्द के अर्थ परमेश्वर में नहीं घटते वैसे ही ऊपर के अर्थ भी नहीं लग सकते। सिवाय इसके जो (तदेवाग्नि०। पद भेद को विषय अर्थ से मिलावें तो स्वामी जी का अग्नि शब्द को परमेश्वर अर्थ में मिलाना ऐसा असंभव होगा जैसे कह दे कि मनुष्य पशु है अथवा पशु मनुष्य है॥-

(अग्निर्होता कविक्रतुः०) स्वामी जी कवि शब्द के अर्थ सर्वज्ञ के लेते हैं तथा सत्य का विनाश रहित। परन्तु निरुक्त में

कविका औरही अर्थ है और स्वामीजी भी जब मंत्र को शास्त्र सं
बन्धि अर्थ में लेते हैं। तो कई प्रकार के अर्थ करते हैं कदाचि
स्वामी जी का अर्थ मान भी लेतो वह उनके अभिप्राय को अग्नि
ईश्वर का नाम है नहीं खोलता क्योंकि यह दस्तूर की बात है
कि देवता की स्तुति करने में सब प्रकार के विशेषण लाते हैं
स्वी॰जी - अब पण्डित जी प्रमाणों की परीक्षा पर बहुत
भूले हैं क्योंकि मैंने अग्नि शब्द से परमेश्वर के ग्रहण विष
य में वेद मंत्रों के अनेक प्रमाण मंत्र भाष्य के आरम्भ में लि
खे हैं उनका विचार छोड़कर मृग के समान आगे कूद कर
चले गये हैं इससे मालूम होता है कि पण्डित जी को मंत्रं
का अर्थ मालूम नहीं और बिना इतनी विद्या के वे साधारण
वा विशेष परीक्षा कैसे कर सकते हैं उनका यह भी लिखना
ठीक नहीं कि इन प्रमाणों से स्वामी जी का अर्थ नहीं निक
ल सकता। अब विद्वान लोग पंडित जी के इस लेख की
परीक्षा करें अर्थात् वे लिखते हैं कि यह मालूम नहीं है
कि (इन्द्रं मित्रं॰) इस मंत्र में उसको शब्द किसके लिये आय
है। इत्यादि तथा निरुक्तकार कहता है कि वह भौतिक
अग्नि के लिये आया है इत्यादि सो पंडित जी को जानना
चाहिये कि बिना ज्ञान वेद विद्या के उनकी परीक्षा करना
बालकों का खेल नहीं इस मंत्र में भी अग्नि का पाठ दो बार
है एक (इन्द्रं मित्रं वरुण मग्नि माहुः) दूसरा (अग्निं यमंता

तीर्ष्वानमाद्यः) इसका अभिप्राय यह है कि अग्निशब्द से दोनों अर्थों का ग्रहण होता है। अर्थात् भौतिक और परमेश्वर। तथा उसमें तीन आख्यात पद होने से तीनि अन्वय होते हैं अर्थात् अग्न्यादि नाम भौतिक अर्थ में और परमेश्वर अर्थ में भी दोअन्वय होते हैं (एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं०) अर्थात् एकशब्द स्तुपर ब्रह्म को विद्वान् लोग अथवा वेद मंत्र अग्न्यादि नामों से अनेक प्रकार की स्तुति करते हैं तथा इसका निरुक्त जो दूसरे पृष्ठ में लिख दिया है उसका भी अर्थ पंडित जीने नहींजाना क्योंकि वहां भी (उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेनभजेते) इसका यह अर्थ है कि अग्नि नाम करके पूर्वोक्त प्रकार से उत्तरज्योति गृहीत होते हैं अर्थात् भौतिक और परमेश्वर इन दो अर्थों का ग्रहण होता है। तथा (इसमें वाग्निं०) इत्यादि इन दोनों अर्थों के अभिप्राय में है क्योंकि विना पठनाभ्यास के कोई कैसाही बुद्धिमान् क्यों न हो गूढ़ शब्दों का यथावत् अर्थ जानने में उसको कठिनता पड़ जाती है इस मंत्र का अभिप्राय मैंने अच्छी तरह वेदभाष्य में प्रकाशित करदिया था तिस पर भी पण्डित जी न समझे वड़े आश्चर्य्य की बात है कि विद्वान् के अभिमानी होकर ऐसी भ्रान्ति में गिर पड़ते और उन प्रमाण मंत्रों के यथार्थ अर्थ को उलटा समझ लेते हैं क्या यह हठ की बात नहीं है कि विद्वान् कहाकर वार २ यही कहते चले जाना कि अग्निशब्द से परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता जैसे इस मंत्र के अर्थ में पण्डितजी

भूल गये हैं वैसेही (तदेवाग्नि०) जो इसमे तैत्तिरीय आरण्यक का नाम लिखा उसके प्रकरण का अभिप्राय पण्डित जीने ठीक २ नहींजाना है क्योंकि वहां परमेश्वर का निरूपण और सृष्टि विद्या दिखलाई है जैसे वह परमेश्वर भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों काल में एक रस रहता है। अर्थात् जब २ जगत् उत्पन्न हुआ, है, और होगा तब २ वह (तदक्षरे परमे व्योमन्) सर्व व्यापक आकाशवत् विनाश रहित परमेश्वर में स्थित होता है क्योंकि (येनावृतं खंचदिवंमहींच०) इत्यादि जिसने आकाश सूर्य्यादि लोक और पृथिव्यादि युक्त जगत् को अपनी व्याप्ति से आवृत कर रक्खा है (येनजीवान् व्यच सर्ज भूम्याम्) जोकि जीवों को कर्मानुसार फल भोगने के लिये भूमि में जन्म देता है। (अतः परं नान्यदणीयमस्ति) जिससे पर सूक्ष्मवा बड़ा कोई पदार्थ नहीं है तथा जो सब से पर एक अद्वितीय, अव्यक्त और अनन्त स्वरूपादि विशेषण युक्त है (तदेवर्त्तंतदु सत्यमाहुस्तदेव ब्रह्म परमं कवीनाम्)। वही एक यथार्थ नित्य एक चेतन तत्त्व मय है वही सत्य वही ब्रह्म तथा विद्वानों का उपास्य परमोत्कृष्ट इष्ट देवता है और (तदेवाग्नि०) अर्थात् वही परमेश्वर अग्न्यादि नामों का वाच्य है। (सर्वे निमेषा जज्ञिरे इत्यादि) जिससे सब कालचक्रादि पदार्थ उत्पन्न हुए हैं तथा (नसंदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्)। हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति) अर्थात् उस परमेश्वर का स्वरूप इन नेत्रों से दृष्टि में नहीं आ सकता अर्थात् कोई उ-

सको आंख से नहीं देख सकता किन्तु जो धार्मिक विद्वान् अपनी बुद्धि से अन्तर्यामी परमात्मा को आत्मा के बीच में जानते हैं वेही मुक्ति को प्राप्त होते हैं तथा जिस अनुवाक का पण्डित जी ने नाम लिखा है उसका अभिप्राय कुछ औरही है अद्वैत शब्द का अर्थ उनकी समझ में ठीक २ नहीं आया क्योंकि उनके मन में ऐसा भ्रम होगा कि सिवाय परमेश्वर के जगत् में दूसरा पदार्थ कोई भी नहीं किन्तु परमेश्वर ही जगत् रूप बन गया है क्योंकि वे लिखते हैं कि तमाम ब्रह्माण्ड एक अंश मात्र है जिस से घोड़ा गौ और खटमल आदि निकले हैं- इससे उनका अभिप्राय स्पष्ट मालूम होता है कि ब्रह्मही सब जगत् रूप बन गया है यह भ्रान्ति उनको वेदादि शास्त्रों के ठीक २ न जानने के कारण हुई है क्योंकि देखो अद्वैत शब्द परमेश्वर का विशेषण है कि जैसे एक २ मनुष्यादि जाति जगत् में अनेक व्यक्ति मय है वैसा परमेश्वर नहीं किन्तु वह तो सब प्रकार से एक मात्र ही है इसका उत्तर भूमिका अंक ४ पृष्ठ ६० की पंक्ति २० में मिलता है जैसे (नद्वितीयो न तृतीय०) इत्यादि में देख लेना तथा (पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं०) इत्यादि मंत्रों का अर्थ भूमिका अंक ५ के ११८ पृष्ठ में (सहस्रशीर्षा०) इत्यादि की व्याख्या से लेकर अंक ६ के १३४ पृष्ठ की समाप्ति पर्य्यन्त देखने से इसका ठीक उत्तर मिल जायगा। और (अग्निर्होता कविक्रतु:०) इसके अर्थ विषय में जो पण्डित जी को शंका हुई है कि अग्नि शब्द से ईश्वर कैसे लिया जाता है तो

निरुक्त में कविशब्द का अर्थ क्रान्त दर्शन अर्थात् सब को जानने वाला है सो सिवाय परमेश्वर के भौतिक में कभी नहीं घट सकता क्योंकि भौतिक अग्नि जड़ है इस मंत्र का अर्थ वेदभाष्य के अंक १ पृष्ठ १६ में देख लेना (क्रतुः) सब जगत् का करने वाला (सत्यश्चित्र श्रवस्तम इत्यादि पदों का अर्थ वहीं देख लेना। जब आग्रह छोड़ के विद्या की आंख से मनुष्य देखता है तब उसको सत्या सत्य का ज्ञान यथावत् होता है और जब इस प्रकार की ठीक२ विद्या ही नहीं तो उसको सत्या सत्य का विवेक कभी नहीं हो सकता तथा नि घं० अ० ३ खं० १५। में मेधावी का नाम कवि लिखा है सो परमेश्वर के सिवाय भौतिक जड़ अग्नि में कभी नहीं घट सकता तथा यजुर्वेद अ० ४० मं० ८ (सपर्य्यगाच्छुक्र०) इस मंत्र में कविर्मनीषी इत्यादि लिखा है यहां भी कवि नाम सिवाय परमेश्वर के भौतिक जड़ अग्नि में कभी नहीं घट सकता। और ये सब प्रमाण मेरे अभिप्राय को ठीक२ सिद्ध करते हैं तथा पण्डित जी का विशेष लेख मेरे लेख की परीक्षा तो नहीं कर सकता किन्तु उनकी न्यून विद्या की परीक्षा अवश्य करता है॥

पं० महेश०— ब्रह्म ह्यग्निः) जो कि आगे की संस्कृत में आता है। जैसे (अग्ने महाँ असि ब्राह्मण भारतेति०) इस में अग्नि को ब्राह्मण कहा है क्योंकि अग्नि इस नियम से (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) ब्रह्म है। और भारत इसलिये कहते हैं

कि वह चढ़ाया हुआ पदार्थ देवता देवताओं को पहुंचता है शत० कां० १। अ० ४ ब्रा० ४ कं० २ इससे मालूम होता है कि यह अग्नि शब्द के अर्थ नहीं किन्तु ब्राह्मण और भारता अग्नि में लगाये हैं॥ (आत्मा वा अग्निः) यह शत० कां० ७। अ० ३ ब्रा० ३ कं० ४। के अगले प्रमाण में आया है जैसे (यद्वेवचिते गार्हपत्ये चित आहवनीये राजानं क्रीणाति। आत्मा वा अग्निः। प्राणः सोमः। आत्मानंस्तत: प्राणं मध्यतो दधाति) अर्थात् यादरख ने गार्हपत्य और पूर्व रखने अग्नि के होम करने वाला सोमलता को मोल लेता है। क्योंकि आत्मा अग्नि है तथा प्राण नाम सोम का है और आत्मा के वीच में प्राण रहते हैं। यहां आत्मा का अर्थ ईश्वर नहीं है किन्तु मनुष्य के जीव से मुराद है तथा अग्नि का नाम भी आत्मा अलंकार रूप से है इसी लिये सोमलता प्राण का अर्थ लिया है अग्नि का अर्थ आत्मा नहीं है जैसे किसोमलता का अर्थ प्राण है। ११ भी शतपथ ब्राह्मण से लिये गये हैं जिसमें इस बात का नाम भी नहीं है कि अग्नि का अर्थ ईश्वर माना जावे किन्तु जहां से ये प्रमाण रक्खे हैं वे बराबर होमादि का विधान करते हैं और वे निस्संदेह केवल भौतिक अग्नि का अर्थ देते हैं दूसरा नहीं। ऐतरेयोपनिषद् के हैं अर्थात् १८ प्रमाण में ईश्वर का वर्णन प्राण, अग्नि, पंच वायु आदि से तथा १३ में ईशान, संभू, भाव, रुद्र आदि ये सब अर्थ उसी नियम पर हैं कि जिसका कथन कर चुके सब वस्तु ब्रह्म है इन प्रमाणों से भी स्वामी जी

के कथन की पुष्टता नहीं होती।२३ प्रमाण में अग्नि कहीं नहीं आया है। सिवाय (अग्निरिवाग्निना पिहितः) ब्रह्म को अग्नि शब्द के तुल्य करने से कि जो अग्नि रिव से उत्पन्न होता है साफ मालूम होता है कि अग्नि और ईश्वर में बड़ा भेद है परन्तु बड़ा आश्चर्य है कि स्वामीजी इसी को अपना प्रमाण मानते हैं। २४ ऐतरेय ब्रा० और शत० ब्राह्म० के हैं जो कह दिये गये॥

स्वा० जी— इसके आगे जो २ प्रमाण मैंने शत पथ के इस विषय में क्रम से धरे हैं उनको तो देखते विचारते नहीं परन्तु इधर उधर घूमते हैं विद्वानों का यह काम है कि उलट पलट के आगे का पीछे और पीछे का आगे कर देवे (ब्रह्म ह्यग्निः) इस वचन से स्पष्ट मालूम होता है कि ब्रह्म का नाम अग्नि है तथा (अथैनमहो असि ब्राह्मण भारतेति) इस वचन के भी दूसरे अर्थ हैं क्योंकि वहां (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) यह नियम कहीं नहीं लिखा। (ब्रह्म ह्यग्नि स्तस्मादाह ब्राह्मण इति। भारतेत्येष हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्माद्भारतोऽग्निरित्याहुरेष उवा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्त्ति तस्माद्देवाद् भारतेति) इस कण्डिका का अर्थ पूर्वापर सं बन्ध से पण्डित जी न समझे क्योंकि इसका अर्थ यह है कि हे अग्ने परमेश्वर आप (महान्) सब से बड़े हैं और बड़े होने से ब्राह्मण तथा सब प्रजा को धारण करने से भारत कहाते हैं और विद्वानों के लिये सब उत्तम पदार्थों का धारण करते हैं इसलिये भी आपका नाम भारत है। इस कंडिका के अर्थ से यथावत् सिद्ध होता है कि

अग्निर्भारत, और ब्राह्मण ये नाम परमेश्वर के हैं और जो (आत्मा वा अग्निः) इसमें अग्नि शब्द से परमेश्वर और भौतिक अग्नि का ग्रहण है इससे दोष नहीं आ सकता यही मेरा अभिप्राय है इसको पंडित जी ठीक २ नहीं समझे और (तस्मादयमात्मन् प्राणो मध्यतः) इसका यह अर्थ है (अयं) यह होम करने वाला वा परमेश्वर का उपासक सब के बल कारक प्राण को शरीर में वा मोक्ष स्वरूप अन्तर्यामी ब्रह्म के बीच में धारण करता है क्योंकि सबके प्राण सामान्य से परमेश्वर की सत्ता में ठहर रहे हैं इससे सब का आत्मा प्राण के बीच में है और मनुष्य के प्राण की अपेक्षा व्यवहार दशा में है परन्तु (सउ प्राणस्य प्राणः) इसके नोपनिषद् के विधान से परमेश्वर का नाम भी प्राण है इससे यहां आत्म शब्द से जीवात्मा और परमात्मा का ग्रहण है। और आत्मा का नाम अग्नि अलंकार से नहीं किन्तु संज्ञा संज्ञि संबन्ध से है क्योंकि उस प्रकरण में वैसेही अग्नि नाम से पूर्वोक्त दोनों अर्थ सिद्ध हैं और यज्ञादि कर्मों में परमेश्वर का ग्रहण सामान्य से आता है। सोम का नाम प्राण शत पथ में इसलिये है कि वह प्राण अर्थात् बल बढ़ाने का निमित्त है परमेश्वर का नाम सोम है सो पूर्वोक्त ऐतरेय ब्राह्मण के प्रकरण में सिद्ध है और जहां २ से प्रमाण लिखे हैं वहां २ सर्वत्र होमादि क्रिया उपासना और परमेश्वर का ग्रहण है परन्तु पंडित जी लिखते हैं कि अग्नि नाम से भौतिक अर्थ का ही ग्रहण होना है यह केवल उनका आग्रह है इसका

उत्तर पूर्व भी हो चुका। और (प्राणोऽग्निः परमात्मेति) यह मैत्र्यु पनिषद् का प्रमाण भी यथावत् परमेश्वरार्थ को कहता है (प्राण) अग्नि, परमात्मा, ये तीनों नाम एकार्थ वाची हैं तथा आत्मा और ईशानादि भी संज्ञा संज्ञि संबन्ध में स्पष्ट हैं और सब वस्तु ब्रह्म है इसका उत्तर मैं पूर्व दे चुका हूं। पंडितजी वेदादि शास्त्रों को न जान कर भ्रम से जगत् को ब्रह्म मानते हैं इ प्रकरण में प्राण, अग्नि, और परमात्मा, पर्य्यायवाचक लिखे हैं। उनका अर्थ विना विचारे कभी नहीं मालूम हो सकता क्यों कि (पंच वायुः) इस शब्द से पण्डितजी को भ्रम हुआ है इसमें केवल व्याकरण का कम अभ्यास कारण है क्योंकि जिसमें पांच वायु स्थित हों सो (पंच वायुः परमेश्वर कहाता है और इस प्रकरण में (विश्वभुक्) आदि शब्द भी हैं इससे दोनों अर्थ वहां लिये जाते हैं (य एष तपत्यग्निरिवाग्निनापिहितः) (एक वा जिज्ञासितव्योऽन्वेष्टव्यः सर्वभूतेभ्योऽभयं दत्वाऽरण्यं गत्वाऽथ बहिः कृत्वेन्द्रियार्थान् स्वाच्छरीरादुपलभेतैनमिति विश्व रूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तं सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः। तस्माद्वा एष उभयात्मैवं विद्वात्मन्येवाभिध्यायत्यात्मन्येव यजतीति ध्यानम्॥ जो परमेश्वर अग्नि और सूर्य्य के समान सर्वत्र तप रहा है जिसको सब विद्वान् लोग जानने की इच्छा करते और खोजते हैं तथा सब प्राणियों को अभय दान देके विषयों से इन्द्रियों को

ऐक के एकान्त देश में समाधिस्थ होकर इसी मनुष्य शरीर से जिसको प्राप्त होते हैं वह परमेश्वर विश्वरूप है अर्थात् जिसका स्वरूप विश्व में व्याप्त हो रहा है और सब पापों को नाश करने वाला उसी से वेद प्रकाशित हुए हैं वह सब विश्व का परम अयन, ज्योतिः स्वरूप। एक अर्थात् अद्वितीय, सूर्य्यादि को तपाने वाला असंख्यातज्योति युक्त अर्थात् सब विश्व में असंख्यात गुण और सामर्थ्य से सह वर्त्तमान सबका प्राण अर्थात् सब प्रजाओं के बीच में ज्ञान स्वरूप से उदित और चराचर जगत् का आत्मा है उस परमेश्वर को जो पुरुष उभयात्मा अर्थात् अन्तर्यामी और परमेश्वर का आत्मा परमेश्वर ही को जानने वाला तथा अपने आत्मा में जगदीश्वर का अभिध्यान और समाधि योग से उसका पूजन करता है वही मुक्ति को प्राप्त होता है इसी प्रकार से (उपलभेतैवमिति) मनुष्य परमेश्वर को प्राप्त हो सकता है अन्य था नहीं क्योंकि पण्डित जी ने इस प्रकरण का अर्थ कुछ भी नहीं जाना इसी से विरुद्ध लेख किया इस प्रकार से यह प्रकरण मेरे लेख का मण्डन और पण्डित जी के लेख का खण्डन करता है भौतिक अग्नि और परमेश्वर में बड़ा भेद है यह मैं भी जानता और मानता हूं कि परन्तु पण्डित जी ने मेरे लेख में उन दोनों का भेद कुछ भी नहीं समझा यह बड़ा आश्चर्य्य है॥

पं० महेश०—(अग्निः पवित्रमुच्यते) पवित्र शब्द की खरखीलगी है कि उसको पवित्र शब्द के अर्थ में लिया है। १८ मनु का है। इस स्थान में मैं कुछ अवश्य कहना चाहता हूं कि एक बड़ा भाग मनु का

जो कि हिन्दु धर्म का बयान करता है। स्वामी जी उसके तोर डाल ने को अपनी ओर प्रेरण अर्थात् रसूली समझते हैं। इसलिये मनु के प्रमाण रखने में उनकी चतुराई नहीं समझी जा सकती। और धरा तो धरा करो परन्तु उससे भी सिद्ध नहीं हो सकता कि अग्नि ईश्वर का वाची है। जैसे सब दृष्ट अदृष्ट सृष्टि को परमेश्वर में स्थित देखना चाहिये। आत्मा सर्व देवता हैं सब आत्मा में स्थित हो रहे हैं कोई कहते हैं कि वह अग्नि है कोई मनु अर्थात् प्रजापति कोई इन्द्र कोई प्राण और कोई २ उसको नित्य ब्रह्म कर के समझते हैं। वह मनुष्य जो परमात्मा को सब में व्यापक देखता है स्वीकार करता है कि सब समान हैं वह परमेश्वर में लवलीन हो जाता है॥ सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः॥ आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्॥ एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्॥ अब देखना चाहिये कि ये सब मंत्रों के प्रमाण स्वामी जी ने अग्नि शब्द के परमेश्वरार्थ में सिद्ध करने को दिये हैं सो कैसे वृथा हैं॥

स्वा० जी- (अग्निः पवित्रमुच्यते) इसका उत्तर हम देके और मनु के प्रमाण के विषय में पण्डित जी का लेख विपरीत है क्योंकि जो आर्य्यों का वेदोक्त सनातन धर्म है उसको पण्डित जी के समान विचार करने वाले मनुष्यों ने उलटा दिया है उस उलटे मार्ग को उलटा कर पूर्वोक्त सत्य धर्म का स्थापन मैं किया चाहता हूं। इस से मेरी चतुराई तो ठीक हो सकती है परन्तु पण्डित जी की चतुराई ठीक नहीं समझी जाती क्योंकि मनु के प्रमाण का अभिप्राय पंडि-

त जीने कुछ भी नहीं समझा (प्रशासितारं सर्वेषां०) इस पूर्वोक्त से पुरु
ष अर्थात् परमेश्वर की अनुवृत्ति (एतमेके वदन्त्यग्निं०) इस श्लोक में
बराबर आती है तथा (अपरं ब्रह्म शाश्वतम्) इस वचन से भी ठीक २
निश्चय है कि जिसका नाम परमेश्वर और ब्रह्म है। उसी के अग्न्यादि ना-
म भी हैं। इस सुगम बात को भी पण्डित जी ने नहीं समझा यह बड़े आश्चर्य
की बात है और (सर्वभूतम् [illegible] निसं पश्ये [illegible] समाहितः) सर्वमा-
त्मनि सं पश्यन्ना धर्मे कुरुते मनः॥१॥ आत्मैव देवताः सर्वाः सर्व मा-
त्मन्य वस्थितम्॥ आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम्॥२॥
एवं यः सर्व भूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना॥ स सर्व समतामेत्य ब्रह्माभ्ये-
ति परं पदम्॥३॥ इन श्लोकों से पण्डित जी ने ऐसा अर्थ जाना है कि प-
रमेश्वर ही सब देवता हैं और सब जगत परमेश्वर में स्थित है यह प-
ण्डित जी का जानना बिल्कुल मिथ्या है क्योंकि इन श्लोकों से इस
अर्थ को नहीं सिद्ध करते (समाहितः) इस पद को अशुद्ध करके (स-
माहितम्) यह पण्डित जी ने लिखा है। जो सावधान पुरुष असत्का-
रण और सत्कार्य्य रूप जगत् को आत्मा अर्थात् सर्व व्यापक परमेश्वर
में देखे वह कभी अपने मन को अधर्म युक्त नहीं कर सकता क्यों कि
वह परमेश्वर को सर्वत्र जानता है॥१॥ आत्मा अर्थात् परमेश्वर
ही सब व्यवहार के पूर्वोक्त देवताओं का रचने वाला और जिसमें स-
ब जगत् स्थित है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव तथा सब जी-
वों को पाप पुण्य के फलों का देने हारा है॥२॥ इसी प्रकार समाधि
योग से जो मनुष्य सब प्राणियों में परमेश्वर को देखता है वह स-

बको अपने आत्मा के समान प्रेम भाव से देखता है। वही परम पद जो ब्रह्म परमात्मा है उसको यथावत् प्राप्त होके सदा आनंद को प्राप्त होता है॥ ३॥ अब देखना चाहिये कि मेरे वेद भाष्य पर विनासम मे जो पण्डित जी ने तर्क लिखे हैं वे सब मिथ्या हैं क्या इस बात को सब सज्जन लोग ध्यान दे के न देख लेंगे॥

पं० महेश०— फिर स्वामी जी लिखते हैं कि अग्नि, परमेश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी पिता पुत्र के समान मनुष्य को उपदेश करता है कि हे जीवो तू इस प्रकार कहो कि मैं अग्नि परमेश्वर की स्तुति करता हूं तिसपर जीव कहता है कि मैं अग्ने ईश्वर की स्तुति करता हूं जो कि सर्वज्ञ, शुद्ध, अविनाशी, अजन्मा, आदि अन्त रहित, सर्व व्यापक, सृष्टि कर्त्ता और स्वयं प्रकाश स्वरूप है दूसरे की नहीं इस विषय में स्वामी जी कोई प्रमाण नहीं देते हैं। संसार स्वामी जी की इस प्रेरणा के बताने का प्रेरणी है। परन्तु उनको ऐसी मधुरता से अपने भाष्य में लेख करना उचित नहीं। अब (अग्निमीले०) पुरोहित शब्द को देखना चाहिये स्वामी जी अर्थ करते हैं वह जो जीवों का पालन और रक्षा करता है तथा हर एक को उत्पन्न कर के सत्यविद्या का उपदेश करता और अपने उपासकों के हृदय में प्रेम भक्ति का प्रकाश करता है। स्वा० जी हित शब्द को डुधाञ् धातु से बनाते हैं जिससे आगे कहे इस वह निरुक्त का प्रमाण धरते हैं (पुरोहितः पुरएनन्द धाति०) यह नहीं समझा जा सकता कि स्वामी जी पुरोहित शब्द से अपने अर्थ कैसे निकालते हैं व्याकरण की रीति से इस हित शब्द के अर्थ आगे

एकवेकेहैं स्वामी जी लेलेहैं किजो कुछ रखता है। व्याकरणकीरीति सेहितशब्द डुधाञ् धातु का कर्माधारणीणक्रिया है। सकर्मकगौण क्रियानहीं। स्वामीजी व्याकरण के सूत्र से सिद्ध करदें परन्तु इस बात का दावा कियाजा सकता है कि हित शब्द किसी उदाहरण से सकर्म कर्मक गौणक्रिया सिद्ध नहीं कर सकते॥

स्वा॰जी— जो अग्निनाम परमेश्वर का लिखा है उसके प्रमाण उसी मंत्र के भाष्य में यथावत लिखे हैं वहां ध्यान देकर देखने से मालूम होजायँगे। तथा पुरोहितशब्द पर जो मैंने प्रमाण वा उसका अर्थ लिखा है सोभी वहां देखने से ठीक २ मालूम होगा कि जैसा व्याकरण और निरुक्तादि से सिद्ध हैं। पण्डितजी पुरोहित शब्द को कर्मवाच्य कृदन्त मानते हैं किन्तु कर्तृवाच्य कृदन्त नहीं। यह उनका कथन कैसा है कि जैसा आम्र मत्तगीत अर्थात् किसी ने किसी से प्रयाग का मार्ग पूछा उसने उत्तर दिया कि यह द्वारिका का मार्ग सूधा जाता है। पुरोहित शब्द के साधुत्व में यहां व्याकरण का यह सूत्र उपयोगी है। (आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च) अष्टा॰ अ॰ ३। पा॰ ४ सू॰ ७१ इससे आदिकर्म विषयक जो क्त प्रत्यय है वह कर्त्ता में सिद्ध है क्योंकि सकल पदार्थों का उत्पादन और विज्ञानादि दान अर्थात् वेद द्वारा सकल पदार्थ विज्ञान करा देना यह परमेश्वर का आदिकर्म है। इसके न होने से सत्यासत्य का विवेक के न होने से परमेश्वर को जानना और परमेश्वर के न होने से उसकी भक्ति होना ये सब परस्पर असंभव हैं। निरुक्तकारने भी पुरोहित शब्द में डुधाञ् धातु से कर्त्ता में क्त प्रत्यय मान कर परमेश्वर का ग्रहण किया है वहां अन्वादेश इसी अभिप्राय से है कि परमेश्वर

सब जगत् को उत्पन्न कर के उसका धारण और पोषण करता है उसी परमे
श्वर को संसारी जन इष्टदेव मान कर अपने आत्माओं में धारण करते हैं
देखिये वेदों में अन्यत्र भी (विश्वस्माउग्रकर्मणोपुरोहितः। ऋ०मं०१सू०
५५ मं०२। यह उदाहरण भी प्रत्यक्ष है। और जो पंडितजी (पद्वे यापिः ७) इस
मंत्र में पुराण की आख्यायिका झूठी कहते हैं। सो सो उनकी बड़ी भूल है क्योंकि
उनको इस मंत्र के अर्थ की खबर भी नहीं है और जो इसके ऊपर जो निरुक्त
लिखा है उसका भी ठीक २ अर्थ नहीं जानते। क्योंकि पंडितजी ने शंतनु शब्द से
भीष्मजी का पिता समझ लिया है जो शंतनु शब्द का निरुक्त में अर्थ लिखा है उस-
की खबर भी नहीं है (शंतनुः शंतनोऽस्त्विति वा शमस्मै तन्वा अस्त्विति वा) जिस
का यह अर्थ है कि (शं) कल्याण युक्त तनु शरीर होता है जिससे वह परमेश्वर
शंतनु कहाता है और जिस शरीर से जीव कल्याण को प्राप्त होता है इसलिये
उस जीव का नाम भी शंतनु है इससे पंडितजी ने इसमें जो कथा लिखी सो सब
व्यर्थ है॥११॥

अब यज्ञ शब्द पर पंडितजी लिखते हैं कि (यज्ञ और देव शब्द को मिलाकर के
लिया है सो बात नहीं है क्योंकि यह लेखक और यंत्रालय का दोष है (यज्ञस्य)
यह शेष की षष्ठी है पुरोहित, देव, ऋत्विक्, होता और रत्नधातम ये सब य
ज्ञ के संबन्धी हैं और अग्नि के विशेषण हैं। यज्ञ शब्द का अर्थ जैसा भाष्य में
लिया है वैसा समझ लेना चाहिये (और निरुक्तकार भी वैसा ही अर्थ लेते
हैं क्योंकि प्रख्यात अर्थात् प्रसिद्ध जो तीन प्रकार का वेदभाष्य में यज्ञ लि
खा है वह निरुक्तकार के प्रमाण से युक्त है और जो गो शब्द का दृष्टान्त दिया
सो भी नहीं घट सकता क्योंकि प्रकरण, आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति, ता

त्यर्थ. संज्ञा आदि कारणों से शब्द का अर्थ लिया जाता है और जो देव शब्द के विषय में पंडित जीने लिखा है कि स्वामी जीने जय की इच्छा करने वाले कहां से लाके लिये हैं इस का उत्तर यह है कि दिवु क्रीडा. त्यर्थ विजिगीषा भी है और जो यज्ञ में विघ्नकारक दुष्ट मार्गी और काम क्रोधादि शत्रु हैं उनका जीतने वाला वही परमेश्वर देव है क्यों कि त्रिविध यज्ञ का रक्षक इष्ट और पूज्य देव परमेश्वर ही है (पुरोहितो व्याख्यातो यज्ञश्च। इसके अर्थ में पंडित जी की बहुत भूल है क्योंकि निरुक्त कार कहते हैं कि हम ने पुरोहित और यज्ञ शब्द की पूर्व व्याख्या कर दी है और जो पंडित जी कहते हैं कि निरुक्त के तीसरे अध्याय के १९ खण्ड में यज्ञ शब्द को व्याकरण से सिद्ध किया है सो झूठ है क्योंकि वहां अर्थ की निरुक्त मात्र कही है सिद्धि कुछ भी नहीं और जो निघण्टु के अ० ३ ख० १७ प्रमाण से यज्ञ के अनेक नाम लिखे हैं कि बहुधा वे होमादिक के विधान में आते हैं और स्वामी जी के अर्थों में से एक भी नहीं मिलता। यह बात पण्डित जी की भ्रान्ति युक्त है क्योंकि उन १५ नामों का अर्थ मेरे अर्थ के साथ बराबर मिलता है क्योंकि मैंने यज्ञ शब्द का अर्थ त्रिविध लिया है इसके साथ उनको मिला कर देखो और पंडित जी निरुक्त कार के विषय में कहते हैं कि देव शब्द के अर्थ देने वाला प्रकाश करने वाला और स्वर्ग में रहने वाला ये तीन नहीं हैं इस देव शब्द विषयक निरुक्त का अर्थ भूमिका के तीसरे अंक के ६३ पृष्ठ की ५ पंक्ति से देखने ना चाहिये। निरुक्तकार (यो देवः सा देवता०) इत्या तो पांच अर्थ लेते हैं उनको पंडित जी ठीक २ नहीं समझे कि निरुक्तकार

कितने अर्थ लेते हैं इसमें पंडितजी की परीक्षा हुई कि वे निरुक्त का अभिप्राय ठीक२ नहीं जानते हैं ॥

पं० महेश० — इसी प्रकार स्वामीजी (ऋत्विजं०) (होतारम्) और (रत्नधातमं) शब्दों के कई अर्थ बहुत रीति से करते हैं परंतु क्योंकि उन की भूल (यज्ञस्य) (देवं) शब्दों में सिद्ध कर चुका हूं इसलिये विशेष लिखना व्यर्था है (स्वा० जी (ऋत्विजं०) का अर्थ करते हैं कि जिस को सब ऋतुओं में पूजा की जाय परंतु सब के प्रमाणिक अर्थ इस शब्द के चढ़ाने वाले अर्थात् भेट करने वाले के हैं और न कि जिसको भेंट चढ़ाई जाय यह बात भी निरुक्त की साक्षी से सिद्ध है कि जिसको स्वामीजी भी प्रमाण मानते हैं ॥

स्वा० जी — अब पंडित जी ऋत्विक शब्द पर लेख करते हैं सो भी ठीक नहीं समझे वे (कृल्लुटो बहुलम्) इस वार्तिक का अर्थ भी नहीं समझे क्योंकि इस वार्तिक से कृत्संज्ञक प्रत्यय कर्म में भी उन शब्दों में किये जाते हैं जो कि वेदादि सत्य शास्त्रों में प्रयुक्त हों इसलिये इस वेदभाष्य में जो इसका अर्थ लिखा गया है सो व्याकरण से सिद्ध है परन्तु पंडित जी ऋत्विज शब्द का अर्थ नहीं समझे ॥

पं० महेश० — स्वामीजी (होतारं) शब्द के जो कई अर्थ करते हैं उनमें से एक (आधातारं) अर्थात् ग्रहण करने वाले के हैं यह भिन्न पद हैं कि जिनसे यह अर्थ लिये जाते हैं (होतारं) जो (हु) से बनता है जिसके अर्थ अगले नियम धातु पाठ के से अदन होने हैं और इस ग्रन्थ को स्वामी जी मानते हैं जैसे (हु दानादनयोः आदाने चेत्येके (हु) धातु

अर्थ दान् अदन और किसी के मत में आदान अर्थात् ग्रहणकरना अदन का अर्थ ग्रहण वा आदान अर्थ ग्रहण करना है। वेदान्त दर्शन का एक सूत्र है (अत्ता चराचर ग्रहणात) इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि अदन का अर्थ ग्रहण करना है और फिर धातुपाठ के उसी नियम से सिद्ध होता है कि अदन शब्द जो उसमें आया है उसके अर्थ आदान के नहीं हो सकते किन्तु उसके अर्थ कुछ और ही हैं नहीं तो उक्त नियम के अनुसार (आदाने चेत्ये के) कैसे बन सकता। किसी के मत में ऋ धातु का अर्थ भी आदान होता है इससे मालूम हो गया कि धातुपाठकारने अदन आदान अर्थ में लाने का कभी ख्याल भी नहीं किया। अर्थात् उस अर्थ में कि जिसमें स्वामीजी ने लिया है। इस सूत्र में कदाचित् स्वा० जी इस बात को सिद्ध कर सकें कि अदन आदान के अर्थ में आता है तो यह वेदान्त दर्शन का सूत्र ही हो यह माना फिर भी वह धातु पाठ के नियम की व्याप्ति में नहीं लग सकता न या पण्डित जी के प्रमाण की पुष्टि कभी नहीं कर सकता। अब इसलिये इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं है कि वेदान्त सूत्र भी जिसको कि स्वामीजी मानते हैं अदन को आदान अर्थ में सिद्ध नहीं कर सकता है, यह तमाशे की बात है कि स्वामीजी ने ऋ धातु से अर्थ लेने की अनेक युक्तियां घूम २ की। परन्तु न मालूम स्वामीजी होता २ शब्द का अर्थ ग्रहण करने वाले लेने में ऐसे अधीर क्यों हो गये। निस्संदेह ग्रहण करने का जो गुण है सो ईश्वर में कभी नहीं लग सकता। अब मैं स्वामीजी के एक ईश्वर प्रति पादन विषय

की परीक्षा कर चुका कि जिसको पढ़नेवाले समझलेंगे॥

स्वा॰जी- अब होता शब्द पर पंडितजी के लेख की परीक्षा करत
पंडितजीको यह शंका हुई है कि अदन का अर्थ जब ग्रहण लें
तब आदान व्यर्थ होजायगा परन्तु इसमें यह बात समझी जाय
जब होता परमेश्वर का विशेषण है तब क्या किसी मनुष्यको
का न होगी कि परमेश्वर भी अत्ता नाम वाला होने से जगत् का भ
ण कारक होगा इसकी निवृत्ति के लिये आदान का अर्थ धार
किया है जो इसके तीन अर्थ हैं उनमें से प्रथम अर्थ को लेकर हो
शब्द के अर्थ ईश्वर को जगत् का भक्षण करनेवाला कोई मनुष्य
माने क्योंकि ईश्वर में यह अर्थ नहीं घट सकता। जो निराकार
सर्व व्यापक है वह भक्षणादि कैसे कर सकता है हां धारण श
से व्यापक होके ग्रहण अर्थात् धारण तो कर रहा है। इसलि
स शङ्का का निवारण इस अर्थ के विना नहीं हो सकता। और जो
डितजीने लिखा कि धातुपाठ के कर्त्ता का यह अभिप्राय नहीं है
भी पं॰जीकी समझ उलटी है क्योंकि जब (हु) धातु का केवल इ
अर्थ के साथही प्रयोग हो और अन्यत्र न हो तब यह दोष। (दे
त्तो भोजनं जुहोत्यत्ती त्यर्थः। ऐसे वाक्य में (अदन) शब्द भक्षण
अर्थ में ही आता है। इस अभिप्राय से पाणिनि मुनि ने (हु) ध
तीनि अर्थों में लिखा है। (आदाने चेत्येके) इसके कहने से स्प
मालूम होता है कि धातुपाठकार के मत में (हु) धातु दान और आ
इन दोनों अर्थों में है। और अदन अर्थ से भक्षण तथा आदान

े जावेंगे। परन्तु कोई आचार्य आदान को पृथक् मानते हैं।
पाठ कार नहीं। इसी लिये आदान अर्थ का पृथक् ग्रहण कि
। इस से जान लो कि धातु पाठ कार का यह ध्यान होता तो
दान और अदन में आदान का पाठ क्यों नहीं कर लेते। इस से
पाठ की वृत्ति में ठीक २ मेरा अभिप्राय मिलता और मेरे ही
की पुष्टि करता है। पं० जी की नहीं। इसी प्रकार वेदान्त का
त्र भी मेरे अर्थ की पुष्टि करता है। पण्डित जी की कुछ भी नहीं।
ों कि (अत्ता) शब्द को ग्रहण करने वाले के अर्थ में वेदान्त सूत्र
ार का अभिप्राय है। (आदान) शब्द के अर्थ के लिये नहीं क्यों कि
आदान शब्द तो स्वयं ग्रहण करने अर्थ में इस लिये इस सूत्र आदि
प्रमाणों के विना (अत्ता) शब्द को ग्रहणार्थ में कोई कभी नहीं ला
सकता। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पं० जी अपनी निर्मूल बात
को समूल करने के लिये बहुत से यत्न करते हैं। परन्तु क्या झूठा सच्चा
और सच्चा झूठा कभी हो सकता है। इतने ही लेख से पण्डित जी की
विद्या की परीक्षा विद्वान् लोग कर लेवें। अब सब सज्जन लोग पूर्व
लिखित साहबों और पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न जी की संस्कृत में
वेद्वत्ता कितनी है। इस को समझ लेवें कि इन्होंने क्या केवल विद्या
ीन पौराणिक लोगों की वेदार्थ विरुद्ध टीका और वैसे ही अंग्रेजी में
तो वेदों पर मूलार्थ विरुद्ध उलटे तरजमें क्यों कि सिवाय ब्रह्मा जी से
ेके जैमिनि मुनि पर्यन्त के किये वेदों के व्याख्यान ग्रंथों को कुछ
रहे। नहीं तो ऐसी अर्थ कल्पना क्यों करते

हां मैं कह सकता हूं कि। (नवेत्तियो यस्य गुणंप्रकर्षं सततस्य निन्द
नतं करोति॥ यथा किराती: करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बि
गुंजाः॥१॥ चोर कोटपाल को दण्डे अर्थात् जो सच्चे को मूंठा दोष
ते हैं। वे ऐसे दृष्टान्त के योग्य होते हैं कि जिसके उत्तम गुण नहिं जा
ना। वह उसकी निन्दा निरन्तर करता है। जैसे कोई भी जंगली मनु
गजमुक्ताओं को हाथ में लेकर उन को छोंड़ के घुंघुची का हार बना
गले में पहन कर फूला २ फिरे वैसे जिन्होंने मेरे बनाये भाष्य पर वि
बात लिखी हैं क्या इस पत्र को जो २ बुद्धिमान् लोग देख के जैसी उ
की पंडिताई की खंडबंड दशा को न जान लेंगे परन्तु मैं यह प्रसि
विज्ञापन देता हूं कि ग्रीफिथ साहब आदि अंग्रेज पं० गुरुप्रसाद
र महेशचन्द्र न्याय रत्न जी और मैं कभी सन्मुख बैठकर वेद विषय
वार्तालाप करें तब सब को विदित होजावे। कि इन विरुद्ध वादि
को वेद के एक मूल मंत्र का भी अर्थ ठीक २ नहीं आता यह बात स
को विदित होजावे मैं चाहता हूं कि ये लोग मेरे पास आवें वा मुझ
पने पास बुलावें तो ठीक २ विद्या और अविद्या का निश्चय होजा
कि कौन पुरुष वेदों का यथार्थ जानता है और कौन नहीं क्योंकि।
द्यादम्भः क्षणस्थायी) सब का दम्भ कुछ दिन चल जाता है पर
विद्या का दम्भ क्षण मात्र में छूट जाता है॥

इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिकृत शंका समाधान युक्त
पत्रं पूर्त्तिमगात्॥ सम्वत्। १९३४ कार्त्तिक शुक्ल २।

...जी कृत पुस्तकोंकी सूचना

...र विधि	मूल्य १।=)	महसूल =)
...र्य्याभि विनय	॥)	=)
...पंच महा यज्ञ विधि	।)	-)॥
...आर्य्योद्देश्य रत्नमाला	=)॥	-)॥
...वेदान्त ध्वान्ति निवारण	=)	-)॥

...क सब पुस्तक एक दाम भेजने से हमारे पास मिल सकते हैं ...र का पुस्तक "मुन्शी इन्द्रमण जी मुरादाबादी के पते से मि... सकता है ॥

द॰ श॰ समर्प्पदान प्रबंध कर्त्ता "वेद भाष्य
मारवाड़ी बाज़ार मुंबई

विज्ञापन

सत्यासत्य विवेक

...ह पुस्तक शास्त्रार्थ बरेली का जो स्वामी दयानन्द सरस्वती और ...ी(ठि जे॰ स्काट साहिब के बीच में तीन दिन तक इन तीन विषयों में हु... ...आवागमन जिसका प्रमाण स्वामी जीने और खण्डन पादरी साहिब ने किय...

...ईश्वर देह धारण कर सकता है } प्रमाण इनका पादरी साहि...
...ईश्वर अपराध भी क्षमा करता है } ने व॰ खंडन स्वामी जीने किय...

...स प्रेस में विलायती कागज पर छपा है (मूल्य =) महसूल ।)॥

...श॰ बख़तावर सिंह मेनेजर आर्य्य भूषण प्रेस शाहजहांपुर ॥

विज्ञापनपत्र

आर्य्यदर्पण " शाहजहांपुर ॥

इस नाम का एक मासिक पत्र उर्दू भाषा में प्रकाशित होता
इसमें वेदादि सत्य शास्त्रानुकूल सनातन धर्मोपदेशादि
के व्याख्यान और आर्य्य समाजों के नियम आदि प्रकाशित
होते हैं, जो उसके देखने से मालूम होगा, जो इस पत्र को
लेना चाहें वे अपना नाम पते सहित लिखकर मुन्शी बख्
तावर सिंह मेनेजर आर्य्य दर्पण शाहजहांपुर के पास भेजें

गुरु. वि. ... कांगड़ी
... पुस्तकालय
पु ... क्रमांक ...
दयानन्द महिला महाविद्यालय ...

पूर्वोक्त पत्र का वार्षिक मूल्य डाक महसूल सहित ३।०)
यह पत्र देखने योग्य है

आजकल यह पत्र उर्दू में निकलता है परन्तु आशा है कि
सन १८८० ई० से यह पत्र उर्दू और आर्य्य भाषा दोनों में निकले